"...था"

9·2 [... भागवन्ती जी]

स्वर्गीय माता भागवन्ती जी, संस्थापक व्यास आश्रम, सप्त सरो...

लेखक— रामप्रसाद वेदालंकार

आचार्य एवं उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्ववि...

'असतो मा सद्गमय—तमसो मा ज्योतिर्गमय—मृत्योर्माऽमृतं गमय'

"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्"

"श्रद्धा साहित्य प्रकाशन का तीसवाँ पुष्प"

एक संक्षिप्त जीवन गाथा

[माता भागवन्ती जी]

आ. पु.
पा. क. वि.

लेखक—

रामप्रसाद वेदालंकार

आचार्य एवं उपकुलपति

(Pro-Vice-Chancellar)

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

[आचार्य गोवर्धन शास्त्री स्मृति पुरस्कार (१९८२) से सम्मानित एवं पुरस्कृत, द्वारा संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर]

पता— रामप्रसाद वेदालंकार

कर्म कुटीर, आर्य नगर, ज्वालापुर

जि० सहारनरर, (उ०प्र०)

पिन-249407, फोन 314

प्रकाशक—

स्वामी परमानन्द एवं बहिन बिमला एवं शान्ति जी

द्वि० संस्करण) दयानन्दाब्द-१५८ (सम्वत् २०३८

३००० प्रतियां) (अगस्त १९८२

आप का दान-श्रद्धा साहित्य प्रकाशन का ज्ञान

मूल्य पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना

नोट—न्यून से न्यून २० रु० तक का दान, दान सूची में प्रकाशित होगा।

विषय-सूची

क्र० सं०	विषय	पृष्ठ
१—	प्रथम संस्करण की भूमिका	४
२—	द्वितीय संस्करण की भूमिका	५
३—	समर्पण	
१—	जीवन गाथा	...१

मूल्य-"श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" से सरल सुबोध रूप में प्रकाशित होने वाला वैदिक साहित्य दानी महानुभावों के दान से प्रकाशित होता है और सुपात्रों को प्रदान करने का प्रयास किया जाता है। पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना ही इस का मूल्य है।

जो महानुभाव इस सरल सुबोध वैदिक साहित्य को उपयोगी समझ कर मंगवाना चाहें वा इसमें अपना आर्थिक सहयोग प्रदान करना चाहें वे कृपया प्रकाशक के निम्न पते पर पत्र व्यवहार करें। न्यून से न्यून २० रु० तक की राशि किसी एक पुस्तक की दान सूची में प्रकाशित की जायेगी, शेष फुटकर रूप में।

रामप्रसाद वेदालंकार

आचार्य एवं उपकुलपति

कर्म कुटीर, आर्य नगर, ज्वालापुर

जिला सहारनपुर (उ० प्र०) *Pin 249407*

समर्पण
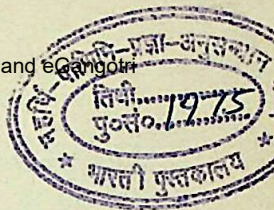
जिस पावन परमेश्वर के अपार अनुग्रह से एवं अपने पूजनीय गुरुजनों के उदार हृदय से प्रदान किये हुए ज्ञानप्रसाद एवं आशीर्वाद से "श्रद्धा साहित्यप्रकाशन" का यह तीसवाँ" पुष्प "श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" द्वारा सेवा और साधना की साक्षात् मुर्तिरुप पूज्या माता भागवन्ती जी की पुण्य स्मृति में उन्हीं की ही यह लघु जीवन गाथा आप के हाथों तक मै पहुँचा सका, उन्हीं गुरुजनों के पावन चरणों में यह मेरा अल्पप्रयास समर्पित है।

विनीत—
राम प्रसाद वेदालङ्कार

प्रथम संस्करण की भूमिका

पिछले वर्ष अप्रैल १९८० में जब व्यास आश्रम के साधना शिविर पर मुझे पूर्व वर्षों की भान्ति जाने का सौभाग्य मिला था तो उन्हीं दिनों एक सज्जन मुझे एक दिन मिले और उन्होंने मुझ से मिल कर कुछ बात करनी चाही। मैं उनकी हार्दिक भावना के अनुरूप उन से मिला तो उन्होंने कहा कि-" हम चाहते हैं कि आप एक ऐसी पुस्तक प्रकाशित करें कि जिस के आरम्भ में पूज्या माता भागवन्ती जी का प्रेरणाप्रद कुछ जीवनवृत्त भी आ जाय और साथ में अध्यात्म प्रेमी महानुभावों को भी कुछ ज्ञान प्रसाद मिल जाय। इस पुस्तक पर जो भी व्यय होगा वह हम देंगे। यदि आप हमारी भावना के अनुसार यह कार्य करने की कृपा करेंगे तो हमें हार्दिक प्रसन्नता होगी।" मैंने पुस्तक का आनुमानिक व्यय बतला दिया और उसे लिखने का प्रयास करूंगा, ऐसा विश्वास भी दिला दिया। इस के उपरान्त उन्होंने मुझे बहुत शीघ्र कुछ ही दिनों में दो सहस्र रुपये भी प्रदान कर दिये और शेष पुस्तक छपने पर प्रदान करने को कह दिया।

मैंने उन से हार्दिक निवेदन किया कि-" आप प्रकाशक के रूप में अपना एवं अपने कुल का कुछ थोड़ा परिचय दें देवें ताकि मैं उसे भी साथ ही प्रकाशित कर दूं।" पर उन्होंने मुझे कहा कि-"इस विषय में आप मेरा नाम तक भी न दें, कुल परिचय आदि की बात तो दूर रही, और न ही मौखिक रूप से आप किसी से यह जिक्र करें कि मैंने इस पुस्तक को प्रकाशित कराया है।" मैं उन की इस सात्विक वृति से बड़ा प्रभावित हुआ और मन ही मन उनकी
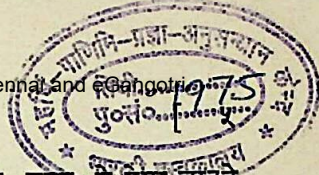
इस साधुवृत्ति की प्रशंसा करने लगा। उन के हृदय से ऐसा चाहने पर भी और मेरा हृदय से ऐसा करना चाहने पर भी इस कार्य में कुछ बाधायें और अड़चनें निरन्तर आती रहीं। उन बाधाओं की चर्चा तो मैं यहां नहीं करना चाहता, परन्तु इतना अवश्य कह देना चाहता हूं कि उन बाधाओं में भी मुझे कम से कम अपने जीवन के लिये बहुत कुछ व्यावहारिक रूप में ऐसा देखने, सुनने तथा सीखने को मिलता रहा कि जिस से मुझे जीवन में सुदीर्घ काल तक आगे बढ़ने और ऊपर उठने की सदा प्रेरणा मिल सकती है। पुस्तक के प्रकाशन में आने वाली इन रुकावटों से जब मैं उभर कर बाहर आया तो तब केवल व्यास आश्रम के शिविर को गिनती के ही दिन शेष रह गये थे। एक बार तो मेरा साहस टूटा, पर फिर उस गुप्त दानी एवं पुस्तक प्रकाशक महानुभाव की भावना को देख कर मैंने फिर साहस बटोरा और उत्साह से इस कार्य में लग गया। पर इस कार्य में अपने इस उत्साह पूर्वक लगने को भी मैं गौण समझ कर उस प्रभु की कृपा, दिव्य गुप्त दानी श्रेष्ठ महानुभाव की दिवंगता पूज्या माता जी के प्रति हार्दिक श्रद्धा एवं प्राण प्रिय प्रभु के प्रति उच्च स्तर का भक्ति भाव भाव ही मुख्य कारण समझता हूँ। इसलिए मेरा हार्दिक प्रयास रहा है कि जहां पूज्या माता जी का संक्षिप्त एवं सारगर्भित प्रेरणाप्रद जीवनवृत्त उसमें आजाय वहां उनकी भावना के अनुसार पूज्या माता जी की पुण्य स्मृति में सरल सुबोध रूप प्रभु भक्ति भरे कुछ मन्त्रों के आधार पर कुछ वेदोपदेश भी उसमे आजायें। इस प्रयास में मैं कहां तक सफल हुआ हूँ यह तो प्रभु ही जाने या स्वाध्यायशील महानुभाव ही जानें। इस के अतिरिक्त इतने संक्षिप्त समय में यदि यह पुस्तक प्रकाशित होकर स्वाध्याय प्रेमियों के कर कमलों तक व्यास आश्रम के साधना शिविर के शुभ अवसर पर पहुंच सकी

तो इसका श्रेय "शक्ति प्रेस" कनखल के सहृदय संचालक एवं कर्मचारियों को देता हूँ, जिन्होने मेरे हार्दिक निवेदन पर कष्ट सह-सह कर भी इसे समय पर प्रदान करने का हार्दिक प्रयास किया। यदि "श्रद्धा-साहित्य प्रकाशन" द्वारा इस पूज्या माता भागवन्ती जी के जीवनवृत्त पूर्वक वेदोपदेश नामक बीसवें पुष्प से स्वाध्याय प्रेमी महानुभावों को जीवन में कुछ ऊपर उठने और आगे बढ़ने की प्रेरणा मिली तो प्रकाशक एवं लेखक अपने धन और पुरुषार्थ को सार्थक समझेंगे।

—०—

द्वितीय संस्करण भूमिका

उपर्युक्त पुस्तक के प्रथम संस्करण की जब थोड़ी सी ही प्रतियाँ रह गयीं तो पूज्या माता प्रकाश पासी जी जिन्होंने कि इस पुस्तक को बड़ी श्रद्धा से पढ़ा था और इस से वे बड़ी प्रभावित भी हुई थीं, सहसा घर पर मिलने आईं। उन्होंने यह इच्छा अभिव्यक्त की कि दैनिक सन्ध्या-हवन सम्बन्धीं एक पुस्तक लिखकर प्रकाशित कर दें उस के प्रकाशन में मैं अपना कुछ सहयोग देना चाहूँगी। 'सन्ध्या पर तो पुस्तक प्रकाशित हो रही है हवन पर आगे लिखूँगा। फिलहाल वेदोपदेश भाग-१ समाप्त होने वाली है उसमें आप चाहें तो सहयोग कर सकती है। उन्होंने कहा," यह पुस्तक भी मुझे बहुत अच्छी लगी यदि आप यही उचित समझते है तो उसी में अपना सहयोग कर दूंगी।" सो उनके सहयोग से वेदोपदेश का द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो गया। एसे ही यह वेदोपदेश भाग-१ जिस पूण्य माता

भागवन्ती जी की पुण्य स्मृति में प्रकाशित हुई उस की जीवन गाथा जो 'वेदोपदेश' के प्रथम संस्करण मे छपी थी वह भी कई महानुभाव जो पूज्या माता भागवन्ती जी पर बडी श्रद्धा रखते हैं, मांगते हैं। यहां तक कि जिन्हों ने उन को अपने जीवन में देखा भी नहीं फिर भी जब उन्हों ने किसी से पुस्तक लेकर उन का यह संक्षिप्त जीवन चरित्र पढ़ा तो वे इतने प्रभावित हुए कि उन्हों ने विशेष रूप से वेदोपदेश की वे प्रतियाँ मांगी और मंगांई जिन में कि पूज्या माता भागवन्ती जी की संक्षिप्त गाथाप्रकाशित हुई। यह स्थिति जब आदरणीय स्वामी परमानन्द जी को ज्ञात हुई यह कि आजकल पूर्ण मनोयोग से व्यास आश्रम की पूज्या माता जी के चरण-चिह्ननों पर चलते हुए सेवा कर रहें हैं, तो उन्होंने कहा कि-पूज्या माता जी की वह जीवन गाथा अवश्य छपनी चाहिये। जहाँ तक उस में आर्थिक सहयोग की बात हैं वह आदरणीय बहिन बिमला जी एवं शान्ति बहिन जी भी करेंगी और फिर मेरे पास जो कुछ भी है वह भी सब पूज्य माता जी का ही है। अतः मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी यदि उनकी जीवन गाथा पुनः प्रकाशित हो सके। उस के प्रकाशित हो जाने पर हम उन्हीं के द्वारा संस्थापित इस व्यास आश्रम में श्रद्धा पूर्वक पधारने वाले सुपात्र महानुभाव को प्रसाद रूप में वह पुस्तक भी दे सकेंगे। सो माता जी की उन आदर्श सर्वपरायण बेटियों एवं पूज्य स्वामी परमानन्द जी बड़ी श्रद्धा पूर्वक प्रदान किये हुए आर्थिक सहयोग का परिणाम समझिये कि "पूज्या माता भागवन्ती जी की यह लघु जीवन गाथा का द्वितीय संस्करण आप के हाथों तक मैं पहूँचा सका। स्वाध्याय प्रेमियों को यदि इस के स्वाध्याय से लाभ हुआ तो लेखक एवं प्रकाशक अपनी लेखनी और अर्थको सार्थक समझेंगे।

विनीत

राम प्रसाद वेदालंकार

जीवन गाथा

[पूज्या माता भागवन्ती जी]

पूज्या माता भागवन्ती जी का जन्म लगभग सन् १९०७ में तहसील कोटली जि० मीरपुर, जम्मु-कश्मीर में हुआ। 'कोटली शहर जहाँ कि माता भागवन्ती का जन्म हुआ, प्राकृतिक दृष्टि से वह बड़ा ही रमणीक स्थान है। हर्याली प्रायः सारा वर्ष वहाँ बनी रहती है। यह शहर पर्वत मालाओं के मध्य में जो समतल घाटी है वहीं पर पुञ्छ नदी के किनारे-किनारे बसा हुआ है। यह वह पावन भूमि है जहाँ कि प्रायः ऋषि-मुनि–सन्त–महात्मा जप-तप करते रहे हैं। ऐसी पावन भूमि पर आज से लगभग ७४-७५ वर्ष पूर्व माता भागवन्ती जी का जन्म हुआ। जिस परिवार में आपका जन्म हुआ वह भी अति धार्मिक एवं धन–धान्य से सम्पन्न एक प्रतिष्ठित परिवार था। आपकी पूज्या माता जी का नाम "श्रीमती रूपदेयी" तथा पूज्य पिता जी का नाम था "श्री फग्गु शाह महाजन।" आप सब मिलकर ७ बहिन-भाई थे। क्रमशः आप सब के नाम ये थे— "ठाकुरदेयी, रामेश्री, लाजवन्ती, शिवदास, परमेश्वरी, भागवन्ती तथा कर्मदेयी। आप अपने पूज्य माता-पिता जी की छटी सन्तान थी।

[1]आप के माता - पिता बहुत ही धार्मिक थे। विचारों की

१–आप की पूज्या माता रूपदेयी तो इतनी धार्मिक थी कि अपनी मान्यताओं के अनुरूप वे प्रातः ३ बजे उठती थीं, नदी पर नहाने जातीं और नहा - धोकर ठाकुर द्वारे जातीं तो वहीं पर अपना पूजा - पाठ करके ७–८ बजे घर वापिस आकर तब कहीं अपने गृह कार्यों में लगती थीं।

दृष्टि से थे यद्यपि वे कट्टर पौराणिक, परन्तु फिर भी वे दृढ़ ईश्वर विश्वासी थे। प्रभु भक्ति के भी उन दोनों में बहुत ऊंचे संस्कार थे। धर्मपरायण होने से वे सदा श्रेष्ठ ज्ञानी विद्वान् तपस्वी महानुभावों के प्रति हार्दिक श्रद्धा रखते हुए उन का अपनी सामर्थ्य के अनुसार बड़ा ही मान-सम्मान करते थे, उनकी सेवा-शुश्रूषा करते थे। तथा उनके चरणों में श्रद्धा-पूर्वक बैठ कर उन के आदेश –उपदेश से भी लाभ उठाया करते थे। इसी प्रकार वे उन के सदुपदेशों को सुन – सुन कर जहाँ उनकी सेवा – शुश्रूषा करते थे वहां अपने दया भाव के कारण दीन - दु:खियों की भी बड़ी सहानुभूति पूर्वक हृदय से सेवा किया करते थे। समय आने पर वे उन को अन्न जल वस्त्र आदि - आदि प्रदान कर – कर के भी अपने धन – अन्न आदि को सकार्थ करते थे।

भागवन्ती जी अपने माता – पिता की छटी सन्तान थी। छोटी सन्तान होने से वैसे ही इन पर अपने पूज्य माता - पिता का हार्दिक स्नेह था। फिर केवल उनका ही नहीं वरन् अन्य भी सभी बहिन – भाईयों से इन को लाड - प्यार मिलता था। फिर गली – महुल्ले वालों का भी आप पर सहज स्नेह और लाड प्रवाहित होता रहता था। इस का एक तो कारण यह था कि आप अपने प्राक्तन उत्तम संस्कारों के कारण इस कुल में उत्तम गुण कर्म स्वभावों को लेकर आयी थीं और दूसरा कारण यह भी था कि आप के पूज्य माता - पिता के धार्मिक, ईश्वर परायण एवं सर्व हितकारी गुणों वाले होने के कारण आप के भीतर के उन उत्तम गुण - कर्म – स्वभावों को और भी खाद – पानी मिला। अतः आप के वे अपने उत्तम गुण कर्म स्वभाव

और भी विकसित रूप में सामने आने लगे। यही कारण था कि अपने पूज्य माता – पिता और बहिन – भाईयों के अत्यन्त लाड–प्यार के कारण कोई बात, जो भी आप के मुख से निकल जाती उसे पूर्ण करने लिये सभी तत्पर हो जाते।

शिक्षा—उस समय अन्धविश्वास तथा रूढ़िवाद के कारण आप को क्रम से उचित शिक्षा तो नहीं प्राप्त हो सकी, फिर भी जो कुछ आप सीख सकीं, वह सब अपने भीतर की प्रेरणा के अनुसार ही अपने जी जान से किये गए पुरुषार्थ के परिणाम स्वरूप ही सीख सकीं। आप की शिक्षा का सुव्यवस्थित रूप से न होने का कारण एक यह भी था कि उन दिनों लड़कियों के लिये शिक्षा की कोई उचित व्यवस्था नहीं थी। फिर सामान्यतः उन के लिये तब पढ़ना–लिखना कुछ आवश्यक भी नहीं समझा जाता था।

उन दिनों प्रायः लड़कियों का विवाह भी बहुत छोटी आयु में ही कर दिया जाता था। अतः उन दिनों की इस प्रचलित प्रथा के प्रभाव से आप भी नहीं बच सकीं। इसलिये लगभग ११-१२ वर्ष की अवस्था में ही सम्भवतः सन् १९१८-१९ में ही श्री सोहन लाल जी से आपका विवाह कर दिया गया। श्री सोहन लाल जी भी आपकी ही तरह एक सुप्रतिष्ठित तथा धन – धान्य से सम्पन्न परिवार का व्यक्ति था। दाम्पत्य जीवन भी आप का बहुत सुखमय थ। विवाह के दस वर्ष के भीतर ही आप की तीन संतानें हुईं। सर्वप्रथम आप ने एक पुत्र को जन्म दिया जो तीन वर्ष की अल्पायु में ही इस संसार से चल बसा। दुःख तो आपको बहुत हुआ पर उसे आप धैर्य से सहन

कर गयीं। इस के अनन्तर आप की २ पुत्रियां हुयीं। प्रथम बेटी का नाम "विमला देवी" है जिस का जन्म मई १६२७ में हुआ और दूसरी बेटी का नाम "शान्ति देवी" है जिस का जन्म अक्तूबर १६२६ को हुआ। आप की बड़ी बेटी विमला जी अभी दो ढाई वर्ष की ही थी और दूसरी बेटी अभी कुछ ही दिन की हो पायी थी कि सहसा आप के ऊपर एक महान् संकट का पहाड़ टूट पड़ा। वह यह कि आप के पतिदेव श्री सोहनलाल जी १६२६ में ही सदा - सदा के लिये आप को छोड़ कर स्वर्ग सिधार गए। ऐसी विकट परिस्थिति में आप के हृदय को जो आघात पहुँचा उस का वर्णन करने से भी हृदय काँप उठता है। आप के तब सभी सपने धूल में मिल गए। उस समय आप की आयु अनुमान से २१-२२ वर्ष की थी।

यह मर्मभेदी घाव अभी हरा भरा ही था कि आप पर एक महान् सङ्कट और आ गया। वह यह कि आपके जो पूज्य पिता 'श्री फग्गु शाह' जी थे, जो इन दुःख की घड़ियों में समय-समय पर आपको धैर्य एवं सान्त्वना दिया करते थे, वे भी आपके पतिदेव की मृत्यु के मास दो-मास के पश्चात् इस नश्वर शरीर से कूच कर गये। इस प्रकार आप पितृ स्नेह से भी अब वञ्चित हो गयीं। इस प्रकार कहां तक गिनाया जाय, उस एक ही वर्ष में आप के पारिवारिक क्षेत्र में सात मौतें हुई जिन्होंने आपके सरल एवं कोमल हृदय को झकझोर कर रख दिया। पहले पति गये, फिर पिता गये, फिर बहन [रामेश्री] गयीं आदि - आदि। धैर्य भी आखिर कहाँ तक धरा जाय!

इस बीच में आप आर्य पुत्री पाठशाला में भी जाकर

कुछ थोड़ा बहुत लिखती पढ़ती भी रहीं पर फिर भी आपका दुख दूर नहीं हुआ।

पौराणिक एवं अत्यन्त रूढ़िवादी परिवार होने के कारण उन दिनों आप का घर से कहीं बाहर निकलना भी कुछ सरल न था। अतः दिन - रात अपनी नन्ही-मुन्नी प्यारी बेटियों के साथ रहते हुए ही आप का सारा समय लगभग रोते हुए और आहें भरते हुए ही व्यतीत होता था। इस दारुण दुख में से-इस घोर आपत्ति में से आप कैसे अपने आप को उभारें, यह आप को कुछ सूझता ही नहीं था। आप की उस समय की उस दयनीय अवस्था को देख - देख कर आपका सारा परिवार भी प्रायः व्यथित और चिन्तित ही रहता था। परन्तु आप की ऐसी स्थिति में वह भी कुछ कर नहीं सकता था, अतिरिक्त इस के, कि आप को थोड़ी धीर बन्धा जाए, सान्त्वना दे जाए, कुछ समझा - बुझा जाए या फिर हार कर उस परम पिता परमात्मा से ही आप के लिये कुछ प्रार्थना कर जाए कि– "वह प्रभु ही आप को भीतर से शान्ति दे, धैर्य दे, सान्त्वना दे इत्यादि।" इस प्रकार आप की उन दिनों की कुछ ऐसी अवस्था हो गयी थी कि न तो आप को कुछ खाना भाता था, न कुछ पहनना भाता था, न किसी मे मिलना - जुलना भाता था, न किसी से बात करना भाता था। कितना भी उन दिनों कोई आप को धीर बन्धा जाता, कितना भी कोई आप को सान्त्वना क्यों न दे जाता, कितना भी आप को कोई समझा-बुझा क्यों न जाता, पर फिर भी आश्चर्य यह था कि आपके हृदय की व्याकुलता मिटती नहीं थी, आप की व्यथा घटती नहीं थी, आप का घाव भरता नहीं था। यह सब देखकर सब

को प्रायः यह चिन्ता हो जाती थी, यह भय हो जाता था कि कहीं आप की यह स्थिति कोई भयङ्कर रूप न धारण कर ले। इसलिये प्रायः सभी निकट सम्बन्धी आप के विषय में सतर्क भी रहा करते थे।

वैराग्य— उन्हीं दिनों स्वामी शान्तानन्द जी महाराज आर्य समाज कोटली में पधारे हुये थे। परिवार के बड़ा विरोध करने पर भी आप अपनी परिचित एक बहन को साथ लेकर आर्य समाज मन्दिर में पूज्य स्वामी शान्तानन्द जी महाराज के पास गयीं। उन्होंने बड़े धैर्य से आप की दुःखद गाथा सुनी और आप को हार्दिक सहानुभूति के साथ सान्त्वना देते हुये कहा कि-"बेटी! यह है गायत्री मन्त्र जो तेरे सभी दुःखों की दवा है। तू इसका बड़ी श्रद्धा भक्ति और उत्साह से जप कर। और इसी मन्त्र के अर्थों का मनन चिन्तन करती हुई उसी सर्वोत्पादक, सर्वपालक, सर्वप्रेरक, सर्वश्रेष्ठ वरणीय प्रभु की शरण में तू जा। प्रिय बेटी! वही सविता देव ही तुम्हारे घावों पर मर्हम लगायेगा, वही तुम्हारे इस व्यथित एव व्यथाओं से मथित हृदय को धीरज देगा, सान्त्वना देगा। वहीं से ही वास्तव में तुझे शान्ती मिलेगी, राहत मिलेगी ......।

पूज्य स्वामी शान्तानन्द जी महाराज के इन सहानुभूति भरे अध्यात्मिक वचनों का पूज्य माता भागवन्ती जी के हृदय पर बड़ा ही उत्तम प्रभाव पढ़ा। उन को उस दिन ऐसा लगा जैसे कि उन को प्रगाढ़ अन्धकार में कहीं से प्रकाश की एक किरण दिखाई पड़ गयी हो, अर्थात् उन को ऐसा लगा जैसे कि उन को कोई राह मिल गयी हो!

उन्होने पूज्य स्वामी जी के उस उपदेश को अक्षरश: शिरोधार्य किया और उसी दिन से ही बड़ी श्रद्धा से गायत्री का जप आरम्भ कर दिया। यथाशक्ति वे उस के अर्थों का भी मनन चिन्तन- करने लगीं। भोजन भी तब उन्होंने एक समय कर दिया। पहले - पहले तो वे केवल रविवार को ही काष्ठ मौन पूर्वक जप - तप करती रहीं, फिर धीरे - धीरे उन्होंने सप्ताह - सप्ताह के, मास - मास के, दो - दो मास के तीन - तीन मास के मौन भी रखने आरम्भ कर दिये। फिर आप ने आगे बढ़ कर ३ मास का मौन रखा जिसमें केवल दूध फलादि ही लेती रहीं। इस प्रकार उन की इन मौन साधना समयों में उनकी पूज्य माता रूपदेयी जी ही उनकी बेटी विमला एवं शान्ति को सम्भालती थीं। अपने इस मौन काल में पूज्य स्वामी शान्तानन्द जी महाराज के निर्देशानुसार वे लगभग प्रातः तीन बजे उठ जातीं और शौच आदि से निवृत होकर ६ बजे तक साधना में बैठ जातीं। साधना से उठकर तब वे स्नान आदि करके यज्ञ- अर्थात् अग्नि होत्र करतीं फिर स्वामी शान्तानन्द जी महाराज के द्वारा प्रदान की हुई उपनिषदों का स्वाध्याय करतीं। तदनन्तर योगी सियाराम जी तथा स्वामी सत्यानन्द जी महाराज द्वारा लिखित महर्षि दयानन्द जी का जीवन चरित्र पढ़ा करती थीं। इस के उपरान्त कुछ विश्राम कर १२ बजे आधा सेर दूध पी कर थोड़ा लेट जातीं। फिर ३ से ६ तक स्वाध्याय आदि कर के ६ से ८ तक जप-तप, अभ्यास आदि करके दुग्धादि ले लेतीं। पुनः ८॥ से दिये के प्रकाश में हलका स्वाध्याय आदि करके दस बजे के लगभग शयन किया करती थीं। इस छः मास के निरन्तर मौन जप, तप, अभ्यास के अनन्तर आप की पूज्य माताजी 'जो स्वयं भी बहुत धार्मिक

एवं ईश्वर की अनन्य भक्त थीं, उन्होंने बहुत बड़ा यज्ञ किया और बड़ी श्रद्धा से ऋषि लंगर कर उसमें सब को निमन्त्रित किया।

इस प्रकार अल्पाहार पूर्वक निरन्तर मौन रख-रख कर स्वाध्याय, जप, तप, मनन, चिन्तन, योगाभ्यास आदि कर-कर के आप को बड़ी राहत मिली, आपके हृदय को बड़ी ढाढ़स मिली। इतना ही नहीं, इस साधना-स्वाध्याय से आप के हृदय पर कुछ और भी ऐसा प्रभाव पड़ने लगा कि आपकी शनै: शनैः इस ओर रुचि और श्रद्धा बहुत बढ़ने लगी। गृहस्थ जीवन फिर एक दम आप को नीरस और भाररुप प्रतीत होने लगा। यहाँ तक कि जिन अपनी प्रिय पुत्रियों के बिना कभी आप एक पल भी नहीं रह सकती थीं, उन्हें तब छोड़ते हुए- त्यागते हुए आपको एक क्षण भी नहीं लगा। अन्त में सन्- १६३२ की एक प्रभात में तीन-साढ़े तीन के मध्य वे महात्मा बुद्ध के समान अपनी शान्ति एवं विमला नामक ढ़ाई और ५ वर्ष की नन्हीं-मुन्नी दोनों बेटियों को सोती छोड़-छाड़ घर से निकल पड़ीं। इधर जब प्रातः साढ़े सात-आठ बजे का समय हुआ तो दोनों बेटियां अपनी नानी जी को बताने गयीं।

१–माता जी ने गृह त्याग के लिये भी यही दिन इसलिये चुना था कि इस दिन उनकी माता जी के यहां श्राद्ध था और उस में ५०० व्यक्तियों का भोजन था। अतः वे इस कार्य में अत्यन्त व्यस्त रहेंगी, अतः उन्हें वे पकड़ नहीं पायेंगी। जब तक वे इधर से निवृत्त होकर उसे ढूण्ढने के लिये कुछ करने कराने का सोचेंगी तब तक वे बहुत दूर निकल चुकी होंगी।

नानी जी ने पूछा कि–"बेटी! तुम्हारी माँ कहाँ गयी ?" इस पर वे विचारी बोली कि –"नानी जी ! हमें कुछ पता नहीं कि वे कहां गयी हैं, क्योंकि हम तो सो रही थीं।"

इस अन्धेरी रात्री में ही नदी को पार कर निरन्तर दस मील पदाति–पैंदल चलने के उपरान्त माता भागवन्ती जी उस "सहस्त्रों" ग्राम में जा पहुँची, जहाँ कि कभी उन के मार्ग-दर्शक गुरुवर सन्त मंगल देव जी ने सन्यास ग्रहण कर स्वामी शान्तानन्द सरस्वती की संज्ञा पायी थी। वहाँ वे भी श्री पं॰ तुला राम जी से मिलीं और उन से गुरुकुल पोठोहार का मार्ग पूछा। श्री पं॰ तुलाराम जी ने अपना सेवक उनके साथ कर दिया ताकि वह उन्हें गुरुकुल पोठोहार पहुँचा दे। परन्तु कुछ ही दूर चलने के उपरान्त उस सेवक से गुरुकुल पाठाहार की ओर जाने वाले मार्ग की जानकारी प्राप्त करके माता जी ने उस सेवक को वापिस भेज दिया और स्वयं प्रभु का नाम ले-ले कर अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ती गयीं। आगे चलकर वे जब "भक्तां दे चोहे" पहुँचीं तो वहां उन को अपनी ही नाम राशि एक दूसरी माता भागवन्ती जी मिलीं, जिन को लोग "बहिन भाग" के नाम से बड़ी श्रद्धा और सम्मान के साथ पुकारते थे। ये माता भागवन्ती जी–अर्थात् "बहिन" भाग जी गुरुकुल पोठोहार की सहायता के लिये सामाजिक क्षेत्र मैं गुरुकुल के आचार्य पं॰ मुक्तिराम उपाध्याय [बाद में स्वामी आत्मानन्द सरस्वती] की दायां हाथ समझी जाती थीं। उसी सेवा सहायता एवं परोपकार की साक्षात् मूर्ति "बहिन भाग" को साथ लेकर वे रात को ही "भक्तदां दे चोहे" ग्राम से पोठोहार की और चल दीं। इस प्रकार वे बिना कुछ विषेश विश्राम के ४-५ दिनों में

जैसे तैसे -कर के गुरुकुल पोठोहार पहुँच गयीं। वहाँ पहले-पहल उन्होंने तीन कुटियाँ देखीं जो गुरुकुल से कुछ फासले पर एकान्त में बनी हुई थीं। उन में तीन छोटी-छोटी खिड़कियां लगी हुई थीं। ये तीनों कुटियाँ धरती से तीन-तीन फुट नीचे मिट्टी की बनी हुई थीं। इन तीनों कुटियों के क्रमश नाम थे–'निर्माण कुटी, विरक्त कुटी और शान्त-कुटी। इन तीनों में क्रमशः पं० विद्याधर जी स्नातक, आचार्य मुक्ति-राम जी उपाध्याय तथा स्वामी शान्तानन्द जी महाराज साधना किया करते थे। ये तीनों प्रतिदिन उषा काल से भी पूर्व [अर्थात् वेद के शब्-दों में "पुरोषसः"=उषसः अपि पुरा=उषा काल से भी पहले] उठ, कर शौच आदि से निवृत्त होकर तीन बजे से ही साधना में बैठ जाते और फिर प्रातः साढ़े छः-सात बजे अपनी कुटियों से बाहर आकर दुग्ध आदि ग्रहण कर गुरुकुल आदि में पढ़ने पढ़ाने एवं प्रबन्ध आदि के कार्यों में जुट जाते थे।

आज माता भागवन्ती जी "बहिन भाग" के साथ जब गुरुकुल पोठोहार प्रातः ही पहुँची तो कुछ समय प्रतीक्षा करने के उपरान्त आचार्य मुक्ति राम उपाध्याय जी अपनी कुटिया से बाहर आए और उन्हों ने "बेटी भागवन्ती जी" को बड़ी विचित्र सी स्थिति में अपने सम्मुख वर्तमान देखा। इस से उन को कुछ आश्चर्य भी हुआ, पर फिर भी बड़े धैर्य से उन्होंने उन से पूछा—"बेटी! आप किस के साथ आयीं? आप कैसे आयीं? आप की यह दयनीय दशा क्यों हुई और कैसे हुई? आप का सामान कहां है इत्यादि .....?

आदरणीय माता भागवन्ती जी का कहना यह था कि–"मैं उस समय नम्र होकर मौन ही खड़ी रही, और बड़ी श्रद्धा से हाथ जोड़े

हुए नीचे ही नीचे देखती रही । उस समय मौन अभिवादन के अतिरिक्त मेरे मुख से एक भी तो शब्द न निकल सका, और न ही मैं कुछ और बात अपने किसी सांकेतिक व्यवहार से प्रकट कर सकी। इतने में पूज्य स्वामी शान्तानन्द जी महाराज भी अपनी कुटी से बाहर निकल आए। तब उन दोनों महापुरुषों ने मुझे जो पितृतुल्य स्नेह दिया' सहानुभूति दी और मेरे उजड़ते हुए-तहस नहस होते हुए जीवन भवन के स्तम्भ बनकर जैसे मुझे स्थिर रूप से खड़ा किया, उस के लिये मैं सदा-सदा के लिये उन की ऋणी रहूँगी और श्रद्धा से उन के सम्मुख नत रहूँगी। इधर उन्होंने उस समय मेरे ठहरने की कुछ अस्थायी व्यवस्था भी कर दी। और उधर शीघ्र ही आचार्य मुक्तिराम उपाध्याय ने [जो बाद में संन्यास लेने के उपरान्त स्वामी आत्मानन्द सरस्वती के नाम से विख्यात हुए] आर्य समाज कोटली के प्रधान एवं मन्त्री जी को पत्र लिख दिया कि 'बेटी भागवन्ती हमारे यहाँ गुरुकुल पोठोहार पहुँच गयी हैं। उन के घर पर आदरणीया माता रूपदेयी जी को आप सूचित कर देवें। और साथ-साथ यह भी निवेदन कर देवें कि बेटी भागवन्ती को इस समय ऐसी लगन लगी हुई है कि इस परिस्थिति में उस का अभी घर वापिस आना बहुत कठिन है। इस लिये विमला एवं शान्ति दोनों बेटियों की देख-भाल करती रहें और बेटी भागवन्ती की ओर से निश्चित रहें ...।"

उस समय जब माता भागवन्ती जी गुरुकुल पोठोहार पहुँच गयी थीं तो वे सिर पर चोटी छोड़ कर सब सिर मुड़वा कर गयी थीं। वे तब खद्दर का चोला और सिर पर खद्दर का दुपट्टा ओढ़े हुए थीं। उस समय उनकी आयु लगभग २५ - २६ वर्ष की थी। उनकी उस

समय की बिगड़ी हुई दयनीय दशा को देख कर आचार्य मुक्तिराम उपाध्याय का कहना यह था कि–"बेटी भागवन्ती की उस समय कुछ ऐसी दशा थी जो देखी नहीं जा सकती थी। पांव में बुरी तरह कांटे चुभे हुए थे। कपड़े भी रास्ते में झाड़-झङ्काड़ में उलझ-उलझ कर पर्याप्त फट गए थे। कई दिनों से जैसे कुछ खाया-पिया ही न हो ऐसा प्रतीत होता था। शरीर से जैसे वह अत्यन्त कृश हो गयी हों, और बड़ी दूर से चल कर जैसे थकी मान्दी वह कहीं आश्रय ढूण्ड रही हो, ऐसा लगता था। सर्वतोभावेन उसको देखने से ऐसा अनुभव होता था जैसे संसार के दारुण दुःखों ने उसके हृदय को छलनी बनाकर रख दिया हो। पर फिर भी वह हृदय से उस सबका प्रभाव अपनी बाह्य आकृति पर न आने देने का निरन्तर प्रयास कर रही हो। परन्तु फिर भी उस की यह दयनीय दशा किसी से छिप नहीं पा रही हो, ऐसा लग रहा था ...।"

इस प्रकार पं० मुक्तिराम जी ने आर्यसमाज कोटली में तो पत्र डाल दिया और पूज्य माता जी की उस दिन तो वहीं व्यवस्था कर दी। परन्तु दूसरे ही दिन पुनः स्वामी शान्तानन्द जी महाराज से विचार-विमर्श कर के उन्होंने उन्हीं की नामराशि दूसरी माता भागवन्ती (बहिन भाग) के साथ उन्हें गुरुकुल से कुछ ही दूरी पर ब्रह्मचारी सेवाराम जी की माता जी के पास स्थायी निवास के लिये भेज दिया। वहां पर उन दिनों श्री महात्मा अगस्तमुनि जी भी एक कुटिया में साधना किया करते थे। ब्रह्मचारी सेवाराम जी की माता के संरक्षण में उन्हीं के पास ही जब माता भागवन्ती जी को एक एकान्त कुटिया मिल गयी तो उन्होंने तुरन्त ही दूसरे दिन से ६ मास का अदर्शन मौन

व्रत प्रारम्भ कर दिया। उनके लिये किसी विशेष गाय के दूध की दोनों समयों के लिये व्यवस्था भी कर दी गयी। वे उन दिनों तब तड़के ही उठ जाया करतीं थीं। पर वे किसी से मिलती नहीं थीं। ब्रह्मचारी सेवाराम जी ही उनके लिये प्रातः गर्म पानी की व्यवस्था कर जाया करते थे। वे वास्तव में आठों पहर के एक ऐसे दिव्य सेवक थे कि पहले सब साधकों आदि को खिला पिला जाते थे तब कहीं अन्त में वे स्वयं कुछ खाते पीते थे। उन दिनों आचार्य मुक्तिराम जी ने साधकों के लिये बथुए और चौलाई के साग की भी व्यवस्था की हुई थी जो बिना नमक के बनता था। उसके अत्यन्त लाभकारी होने के कारण साधकों को एक-एक कटोरा वह शाक भी घृत आदि डाल कर दिया जाता था। इस प्रकार ग्राम-नगर आदि से दूर रह कर ऐसे एकान्त एवं शान्त स्थान पर ऐसे दिव्य महापुरुषों के संरक्षण में सात्विक दुग्ध एवं शाक रुप आहार लेते हुए जप-तप, स्वाध्याय, मनन, चिन्तन पूर्वक जो छः मास का अदर्शन मौन पूज्या माता जी ने किया उससे उनको पर्याप्त लाभ प्राप्त हुआ, जीवन के ये दिन तब उनके बहुत ही सुखमय व्यतीत हुए–बहुत ही आनन्दमय व्यतीत हुए। उन्हें सचमुच तब ऐसा अनुभव हुआ कि "वास्तव में जीवन तो प्रभु की शरण में ही आनन्दमय है।

इस छः मास के लम्बे अदर्शन मौन के उपरान्त ही उनके चचेरे भाई श्री दीनानाथ जी और चाची श्रीमती पार्वती जी आप को गुरुकुल पोठोहार लेने आ गये। वे आर्यसमाज की विचार धारा में अत्यन्त रुचि रखते थे। उन के अति स्नेह एवं आग्रह पर माता भागवन्ती जी उनके साथ कोटली चली तो गयीं पर वे वहाँ जाकर भी

अपने घर पर नहीं ठहरी वरन् आर्यसमाज मन्दिर में ही ठहरीं जहाँ कि वे जप तप सेवा स्वाध्याय आदि के द्वारा अपने जीवन को ऊंचा उठाने और आगे बढ़ाने में ही निरन्तर लगी रहीं।

उन्हीं दिनों आर्य समाज कोटली में महाशय खुलहाल चन्द जी पधारे। माता भागवन्ती जी की पूज्या माता रूपदेयी जी ने उनको अपने घर पर भोजन के लिये सादर आमन्त्रित किया। भोजन करते हुए प्रसंगवश महाशय खुशहाल चन्द जी उस पूज्या माता जी से बोले कि—'माता जी! मैं आप से एक प्रार्थना करना चाहता हूँ, वह यह कि आप हमें अपनी बेटी दे दो, आर्यसमाज को उसकी अत्यन्त आवश्यकता है" इस पर रूपदेयी जी बहुत नाराज हुईं और महाशय खुशहाल चन्द जी से बोलीं—"जो भी आता है वही यह कहता है कि 'अपनी बेटी दे दो, अपनी बेटी दे दो ।' पर मैं कहती हूँ—अरे तुम मुझे यह सब कहते हो, तो तुम अपनी बेटियों को ही क्यों नहीं दे देते! बताओ उस बेटी को दे देने के उपरान्त इन दोनों छोटी-छोटी विमला और शान्ति बेटियों का भला क्या होगा ?" इस पर महाशय खुशहाल चन्द जी बोले – "माँ जी! आप इन की क्यों चिन्ता करती हो, जब बहिन भागवन्ती जी लाहोर में नारी निकेतन को सम्भाल लेंगी तो तब ये दोनों बेटियां भी उनके पास वहीं रह लेंगीं आदि आदि···।" इस बात को सुन कर तो माता जी को और अधिक क्रोध आ गया। और फिर वे क्रोध में भर कर बोलीं कि-"खुशहाल चन्द! हाय तुम्हें यह हो क्या गया है, जो यह सब कुछ तू कह रहा है! हम क्या कोई भूखे नंगे हैं-या फिर सब मर गये हैं जो विमला और शान्ति-ये दोनों

छोटी-छोटी बेटियां भी नारीनिकेतन में ही रह लेंगी ।" इस बार तो महाशय खुशहाल चन्द जी मौन हो गये और अपनी कही हुई बातों पर भी बड़े खेद का अनुभव करते हुए प्रायश्चित्त सा करने लगे ।

भोजनोपरान्त आर्य समाज मन्दिर पहुँचने पर महाशय खुशहाल चन्द जी ने जब माननीया माता भागवन्ती जी से यह कहा कि-"बहन जी ! आज तो माता जी मुझ पर बड़ी ही क्रुद्ध हो गयीं...।" इस पर माता भागवन्ती जी बोलीं कि "भय्या जी, आपने उन्हें कोई ऐसी बात कह दी होगी तभी वे गुस्सा हो गयी होंगीं, अन्यथा वे तो कभी गुस्सा करतीं ही नहीं ।" महाशय जी बोले-' हां बहिन ! मैंने यह सब कुछ कहा था ।" तो इस पर माता भागवन्ती जी बोलीं "तब तो भय्या जी ! उनका क्रुद्ध होना स्वाभाविक ही था और समुचित भी था ।"

इस के उपरान्त आदरणीया माता जी का आना-जाना प्रायः लाहौर महात्मा खुशहाल चन्द जी के यहाँ लगा रहा । उन दिनों महात्मा जी जैसे आर्य समाज का प्रचार करने के लिये बाहर जाया करते थे वैसे ही माता भागवन्ती जी भी पूज्य महात्मा जी की अर्धांङ्गिनी पूज्या माता मेला देवी जी आदि - आदि के साथ मिल - जुल कर खूब स्थान - स्थान पर महिला सत्संग लगा - लगा कर आर्य समाज का प्रचार किया करती थीं।

यह सब कुछ करतें हुए भी आप का निश्चित रूप से निवास स्थान गुरुकुल पोठोहार ही में ब्रह्मचारी सेवाराम जी की आदरणीया

पूज्या माता जी के पास ही बना रहा। यद्यपि प्रचार आदि के लिये बाहर जाने से इस मध्य में जैसे आप का महाशय खुशहाल चन्द जी [बाद में संन्यासी रूप में महात्मा आनन्द स्वामी] आदि से परिचय हुआ वैसे ही अमृतसर में आर्य समाज के कर्मठ कार्यकर्त्ता श्री लाला गुरुचरण दत्त जी एवं लाला अमरनाथ जी महाजन तथा उनके परिवारों से भी सम्बन्ध स्थापित हुआ। इन दोनों ने भी महात्मा खुशहाल चन्द जी के समान सदा आप को अपनी बहिन मानकर आप के सामाजिक कार्यों में तन मन धन से आप का सहयोग किया। यद्यपि कई वर्ष हो गए तो भी इन ढाई - तीन मास की अन्तिम रुग्णावस्था में इस कुल का कोई एक बच्चा भी शेष नहीं रहा जो कि श्रद्धा एवं सम्मान से हृदय में गहन सहनुभूति को संजोए हुए आप को देखने, भालने न आया हो। यों लाला अमरनाथ जी तो कई-कई दिनों भी आप की सेवा में रह गए। ऐसे अनेकों पूज्य बहिनें और माताएं भी कई-कई दिन आप की सेवा में रह गयीं या दिल्ली में वास होने पर प्रायः आती रहीं। जैसे बहन सरोज ओहरी (होशियारपुर) अशोका बहिन जी, बहिन शीला सूरी जी, श्री रामकिशन गम्भीर जी एवं माता जी तथा कपूर जी, नरिन्द्र बहिन जी आदि - आदि। बहुतों के तो मैं नाम भी नहीं गिना सकता जा पूज्या माता जी के श्री चरणों में प्रायः सेवा-शुश्रूषा के लिये उपस्थित हुआ करते थे। महात्मा खुशहाल चन्द जी (आनन्द स्वामी) एवं लाला गुरुचरण दत्त जी के परिवारों में से तो यद्यपि कई ऐसे ज्येष्ठ श्रेष्ठ व्यक्ति संसार से विदा भी हो गए तो भी उन के परिवार के अवशिष्ट सभी सदस्यों की पूज्या माता जी के प्रति वही घनिष्ठता बराबर बनी रही जो कभी उन के समयों में थीं, तभी तो वे पूज्या माता जी की किसी भी समस्या के आने पर ऐसे परिवार माता जी के

मौन संकेत के पाने पर भी उस समस्या के नीचे स्तम्भ बनकर आ खड़े होते थे। माननीय श्री रामकिशन गम्भीर जी को जब यह ज्ञात हुआ कि पूज्या माता जी यदि स्वास्थ्य ने आज्ञा दी तो शिविर पर व्यास आश्रम जाना चाहेंगी तो उन्हों ने कहा-"यह गाड़ी तो माता जी की ही है, अतः जो आज्ञा करें, जब आज्ञा करें, यह तैयार है। ऐसे ही पूज्या बहिन शीला सूरी जी (धर्मपत्नी श्री ओमप्रकाश जी सूरी) मिलाप परिवार से प्रायः आपको देखने आती और घन्टों आप के पास बैठती थीं। एक बार जब वे आयीं तो माता जी ने कहा कि-"अब की बार शिविर में यज्ञ आदि का सब प्रबन्ध आप ने करना है।"उन्होंने माता जी के इस आदेश को अपना बहुत बड़ा सौभाग्य समझा और बड़ी प्रसन्नता से उसे स्वीकार कर लिया, और सब प्रकार से घृत सामग्री आदि आवश्यक पदार्थों का प्रबन्ध करने का विचार कर लिया। पुनः कभी वे पूज्या माता जी को देखने आयीं तो प्रसंगवश माता जी बोलीं कि-" बेटी ! यदि मैं बनी रही तो क्या आप मुझे हरिद्वार व्यास आश्रम के साधना शिविर पर लें चलोगी······" इस पर आदरणीया बहिन शीला सूरी जी बोलीं-"भुआ जी ! मैं आपको बड़े आराम से मेटाडोर गाड़ी में ले चलूगीं। साथ-डाक्टर को भी ले चलूंगी। पांचों दिन गाड़ी-ड्राईवर और डाक्टर तथा हम सब आप की सेवा में रहेंगे ··।" इस पर पूज्या माता जी ने बड़े स्नेह एवं आशीर्वाद भरी दृष्टि से उन की ओर निहारा और हृदय से साधुवाद दिया और अनुभव किया कि है तो आखिर मेरे उसी अनन्य पूज्य भाई महात्मा खुशहाल चन्द (आनन्द स्वामी) जी की ही पीढ़ी !है तो आखिर उन्हीं के प्यारे पुत्र, उदार भाव के धनी प्रसन्नता की मूर्ति श्री ओमप्रकाश सूरी जी की ही

अर्धाङ्गिनी ·····।" यह सब पूज्या माता जी से कहकर जब शीला बहिन जी [उपनाम शान्ता बहिन जी] घर पर आयीं तो अपने बेटे पूनम जी से यह बात कही। यह सुनकर उसने अपनी पूज्या मां के आदेश को इनकार नहीं किया, वरन् कहा कि "मां जी! जरूर ले चलो, यह गाड़ी-ड्राईवर सदा आप के आदेश पर हाजिर है, परन्तु माँ जी! क्या भुआ जी ऐसी स्थिति में हरिद्वार चल सकेंगी? मुझे तो कठिन लगता है।" कहने का तात्पर्य यह है कि पूज्या माता जी की भावनाओं का ये सभी परिवार बहुत मान करते थे और उनकी सेवा करने को अपना अहोभाग्य मानते थे। मैं किन-किन के नाम गिनाऊं- मुझे तो नाम भी बहुतों के स्मरण नहीं आते, पर श्री नारायण दत्त जी कपूर एवं लाला अमर नाथ जी, श्री सीता राम जी सरीखे अनेकों ऐसे महानुभाव हैं जो पूज्या माता जी के आदेशों की तो बात ही क्या, उन के मौन संकेतों पर भी अपना मूल्यान् से मूल्यवान् कार्य छोड़कर उन की सेवा में आ उपस्थित होते थे, और तब तन मन धन से उन का सहयोग करते थे। अब जब कि वे संसार में नहीं रहीं तो भी उन की भावनाओं पर समर्पित भाव से ये सब कार्य कर रहे हैं। ऐसे एवं ऐसे अन्य अनेक महानुभाव पूज्या माता जी को अपने परिवारों का एक अभिन्न अङ्ग मानते थे। अतः उन के सब कार्य भी उन को अपने ही कार्य प्रतीत होते थे। इस सब का कारण केवल यही था कि आप का जीवन सदा नि स्वार्थ और सेवापरायण रहा। आप बहुत ही सरल सौम्य निश्छल निःस्वार्थ भाव से सब से व्यवहार करती थीं। क्रोध और झुँझलाहट से आप सदा परे रहती थीं। वैराग्य पूर्वक अभ्यास में-- प्रभु भक्ति में आप की अत्यन्त रुचि थी। आप के इस निर्मल उत्तम जीवन से जब इन महानुभावों को जीवन मिलता था, सत्प्रेरणा मिलती थी तो फिर ये

सब मुग्ध होकर आप के आदेशों के पालन करने में अपना अहोभाग्य ही मानते थे।

इस प्रकार सामाजिक सेवामय कार्यों में कुछ लग जाने पर भी आप की आध्यात्मिक रुचि निरन्तर वैसी ही बनी रही। तभी आप समय-समय पर मौन रखती रहीं, तथा जप तप करतीं। ऐसे समयों में कभी-कभी अवकाश के दिनों में वा गर्मियों के दिनों में जब गुरुकुल पोठोहार से पं० मुक्तिराम (स्वामी आत्मानन्द) जी एवं पं० विद्याधर जी आदि के संरक्षण में गुरुकुल के ब्रह्मचारी आते थे तो वे प्रायः जहलम, मीरपुर, खुईरट्टा, पुञ्छ, कोटली में रुकते थे। वहां वे प्रचार भी करते थे और साथ-साथ ब्रह्मचारियों के आसन, प्राणायाम, तीर-न्दाजी और अन्य अनेक कार्यों का भी प्रदर्शन कराया करते थे। ऐसे अवसरों को आप कभी खाली नहीं जाने देती थीं। अतः आप पूज्य स्वामी जी से अपने उद्देश्य के प्रति सदा सगज रहती हुई बहुत कुछ साधना के विषय में जिज्ञासु भाव से पूछा करती थीं। पूज्या माताजी का कहना था कि–"उन के प्रति श्रद्धा लोगों में इतनी अधिक थी कि प्रायः सब चाहते थे कि– 'ये सब हमारे यहां भोजन करें, ये सब हमारे यहाँ भोजन करें,…… ।" पर बहुत चाहने पर भी एकाध समय ही उन सब को प्रायः मिल पाता था। वे सब जब वापिस गुरुकुल जाया करते थे तो अपनी बहुत सी मधुर एवं प्रेरणामयी स्मृतियां अपने पीछे छोड़ जाया करते थे। ऐसे अवसरों पर पूज्या माता जी प्रायः सब की खूब सेवा किया करती थीं और पूज्य स्वामी आत्मानन्द जी आदि महापुरुषों से हार्दिक आशीर्वाद पाती थीं।

आप का अत्यन्त सात्विक सरल सौम्य सेवामय सन्तों जैसा ईश्वर परायण आदर्श जीवन होने के कारण उस समय के अनेकों महापुरुषों का बड़े सौभाग्य से आप को सम्पर्क मिला जिन से कि आप को सदा पितृतुल्य एवं भ्रातृतुल्य स्नेह एवं संरक्षण मिलता रहा। उन सब के पावन नेतृत्व में और संरक्षण में रह - रह कर आप ने बहुत कुछ सीखा और तदनुसार समाज की बहुत बड़ी - बड़ी सेवाएं कीं। ऐसे अनेकों महापुरुषों का नाम पूज्या माता जी प्रायः लिया करती थीं। उन में से कुछ के नाम निम्नलिखित हैं। पूज्य स्वामी शान्तानन्द जी महाराज, पं० मुक्तिराम जी उपाध्याय [बाद में संन्यास में जो स्वामी आत्मानन्द सरस्वती के नाम से विख्यात हुए] महात्मा नारायण स्वामीजी, स्वामी सत्यानन्द जी, स्वामी गंगागिरि जी, स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी, महात्मा खुशहाल चन्द जी [महात्मा आनन्द स्वामी जी] महात्मा हंसराज जी, भाई परमानन्द जी, पं० ऋषिराम जी, महातमा गान्धी जी, लाला लाजपतराय जी, पं० विद्याधर जी, वीर सावरकर जी, श्री लाल बहादुर शास्त्री जी, आदि आदि। ऐसे महापुरुषों के सम्बन्ध में जब कभी पूज्या माता जी अपने नानाविध संस्मरण सुनाती थीं और उन की शिक्षाप्रद एवं प्रेरणाप्रद घटनायें सुनाती थीं तो उस समय प्रायः मेरा [लेखक का] जी यही करता था कि— 'मैं उन सब को नोट कर लूं और "महापुरुषों के संस्मरण" नाम से पूज्या माता जी की ओर से उस पुस्तक को प्रकाशित कर दूं, ताकि उस से सब को बड़ी प्रेरणायें मिलें और वे सब उन्नत हों' परन्तु यह सब मेरे जी की जी में ही रह गयी और वे दिव्य माता इस संसार से विदा हो गयीं।

जैसे पूज्य स्वामी आत्मानन्द जी के सम्बन्ध में ही ले लीजिये। उन के सम्बन्ध में पूज्या माता जी का कहना था कि–"वे तो ऐसे सन्त थे, ऐसे महापुरुष थे, कि कितनी भी बड़ी से बड़ी हानि क्यों न हो जाए, कितना भी विपरीत से विपरीत व्यक्ति क्यों न आ जाए, वे कभी गुस्सा नहीं होते थे। उन के जीवन में ऐसी शान्ति मैंने देखी कि सारे जीवन में किसी अन्य महापुरुष के जीवन में मैंने वैसी शान्ति नहीं देखी। यों तो मेरे प्रथम गुरु स्वामी शान्तानन्द जी थे जिन्होंने कि मुझे सर्वप्रथम मार्गदर्शन दिया था पर वे भी यदि कोई मांस आदि खाने वाले या अन्य कुछ विपरीत प्रवृत्ति के व्यक्ति होते तो उन पर बड़े गुस्सा हो जाते थे। वैसे यों नाम तो उनका ही स्वामी शान्तानन्द जी महाराज था, पर शान्ति तो प्रभु ने पूज्य स्वामी आत्मानन्द जी को ही दे रखी थी। उस महापुरुष की मैं क्या-क्या विशेषता बतलाऊं? वे स्वयं ही अपने वस्त्र धोते थे, अपने कमरे की सफाई भी करते थे। बहुत अनुनय-विनय करने पर भी वह अपना कार्य स्वयं करते हुऐ मन्द - मन्द स्वर में यह उपदेश दे दिया करते थे कि–"बेटी! जीवन तो स्वभावलम्बी ही ठीक रहता है। उस से मनुष्य सदा सुखी रहता है।" ऐसी उस तपोमयी ज्ञान -वैराग्य रूप से सम्पन्न शान्ति की साक्षात् मूर्ति से मुझे जीवन में बहुत कुछ सीखने को मिला, उस के लिये मैं उनकी सदा कृतज्ञ रहूँगी। वे सदा यह कहा करते थे कि–"बेटी ग्रामों और वनों में अर्थात् एकान्त और शान्त स्थानों में सदा तप करना, जप करना और शहरों में अपनी परीक्षा करना इत्यादि।" सो ऐसे महापुरुषों के उन अनुपम उपदेशों को हृदय में संजोए हुए ही मैं प्रभु कृपा एवं उनके आशीर्वाद से आगे बढ़ती रही हूँ।"

माता जी पुनः आगे कहती थीं कि—"उन्होंने मेरे आध्यात्मिक मार्ग में तो जो कुछ मुझे सहयोग दिया सो दिया ही, पर उन्होंने तो मेरी उन दोनों बेटियों के लिये भी बहुत कुछ किया, जिन के लिये अपनी वैराग्य वृत्ति के कारण मैं भी कुछ नहीं कर सकी। उन्होंने बेटी विमला और शान्ति - दोनों का ही बड़े स्नेह से विधिपूर्वक उपनयन संस्कार किया और उनको उस प्रसंग से बड़ी उत्तम शिक्षा भी दी। बड़ी बेटी विमला जी का तो जब विवाह भी कोटली निवासी श्री त्रिलोक चन्द जी से हुआ तो उसमें पूज्य स्वामी जी ने "चोहा भक्ताँ वाली" 'बहिन भाग' के साथ मिलकर बेटी विमला का सारा दहेज खरीदा और विवाह संस्कार आदि भी बड़े स्नेह और वैदुष्य पूर्वक समझा-समझा के इतनी उत्तम रीति से करवाया कि मैं देख-देख, सुन-सुन कर पुनः पुनः स्तब्ध रहती रही, पुनः पुनः भगवान् का धन्यवाद करती हुई कहती रही कि–"प्रभुवर ! तू ने कितने अनुपम विद्वान् एवं महान् पुरुषों से इसे धरती माता को अलंकृत किया हुआ है। आज जब मैं इस दृष्टि से उनके उपकारों को स्मरण करती हूँ, तो मैं रोम - से उनके प्रति कृतज्ञता का अनुभव करने लगती हूँ। और तब मेरा सिर उस महापुरुष के पावन चरणों में सहज ही झुक जाता है ·····।" आगे चल कर कोटली के ही निवासी श्री जगदीश लाल जी गुप्ता से बहिन शान्ति जी का विवाह हो गया। बहिन शान्ति जी की तो कोई सन्तान नहीं है पर बहिन विमला जी का एक सुपुत्र श्री रमेशचन्द्र है जिस का विवाह भी जम्मु वासी माता सुदर्शना एवं श्री जगदीश राज महाजन की सुशील बेटी "ललित प्रभा" से हुआ और दूसरी बेटी शशी का भी पाणिग्रहण संस्कार हो गया। दुर्भाग्य की बात यह है कि आदरणीय बहिन विमला जी एवं आदरणीय बहिन शान्ति जी दोनों के पति भी

आज संसार में नही हैं पर फिर भी जिस अनुपम मां की ये पुत्रियाँ हैं उन्हीं के जीवन से धैर्य-सान्त्वना ले - लें कर बड़े धैर्य और शान्ति के साथ शिक्षा के माध्यम से ये राष्ट्र की बड़ी लगन से सेवा कर रही हैं। इतनी उत्तन बेटियों के होने पर भी पूज्या माता जी जीवन भर उन से इतनी विरक्त रहीं कि उन के यहाँ आप कभी जाती ही नहीं थीं। पर आप ही की पूज्या माता रूपदेयी जी ने १६४८ में इस संसार से विदा होते हुये आप से दो बातें कहीं थीं, वे ये कि—"भागवन्ती ! सारा जीवन मैंने तेरी बेटियों को पाला-पोसा है आदि-आदि, पर अब मैं संसार से जा रही हूँ। अतः मेरी दो बातें जरूर मानना वे ये कि– "जब सारे संसार की बेटियों को बेटी समझ कर तू उन के पास जाती है और उन को धीरज देती है तो इन विचारियों ने क्या पाप किया है जो तू इनके यहाँ नहीं जाती। अतः अब वहाँ तू जरूर जाया करना। तेरे वहाँ जाने से उन को बड़ा धैर्य मिलेगा, प्रसन्नता मिलेगी। दूसरी बात यह है कि आगे से सिर न मुड़वाया करना।" सो माता जी के कहने पर आगे से उन्होंने फिर सिर मुड़वाना तो छोड़ दिया पर बेटियों के यहां तब भी नहीं गयी और न ठहरीं। दिल्ली जाने पर सदा मान्या माता मेला देवी जी आदि-आदि के परिवारों में ठहरा करती थीं। हां आगे फिर जब बेटियों पर भी ऐसे महान् संकट आए कि जिन में उन के पति भी संसार से कूच कर गए तो तब उन्हें धीर बन्धाने के लिये थोड़ा बहुत वे वहां जाती रहीं, पर जाकर भी वे बहुत विरक्त भाव से वहां रहती थीं। ऐसा लगता था जैसे कि वे उनकी बेटियां ही नहीं हों और वें यों ही उनको अन्य बेटियों की नाईं केवल सान्त्वना देने के लिये ही वहां जाती हों। जीवन के अन्तिम दिनों में ये बेटियां उन की रुग्णावस्था में जी-जान से जब उन की सेवा करती थीं तो वे प्रायः

कहा करती थीं कि-"बेटी ! तुम क्यों मेरी इतनी सेवा करती हो, मैंने तो जीवन में तुम्हारे लिये कभी कुछ भी नहीं किया इत्यादि" इस पर बेटियों का हृदय भर आता और वे कहने लगतीं "माँ ! जो कुछ हम को प्रभु ने आज दिया और जो कुछ भी हम आज हैं वह सब भी आप के ही तो आशीर्वाद का फल है। अतः मां जी ! आप ऐसा न कहा करें !"

तो मैं कह रहा था कि स्वामी आत्मानन्द जी सरीखे बहुत से महापुरुषों के सम्बन्ध में पूज्या माता जी प्रायः बहुत चर्चा किया करती थीं, पर उन सब के सम्बन्ध में तो कुछ अधिक लिख पाना भी अभी सरल नहीं है फिर भी उन के इस एक ही संस्मरण से उन के हृदय के महापुरुषों के प्रति कृतज्ञता भरे भावों का बोध तो हो ही जाता है। इस प्रकार ऐसे ही अनेकों महान् पुरुषों के सम्पर्क-एवं सदुपदेशों से वे अपने नम्र स्वभाव से बहुत कुछ ग्रहण कर जहाँ अपने आपको उठाने का समय-समय पर मौन आदि रख-रख कर प्रयास करती थीं वहां उन्हीं की प्रेरणाओं से आर्य समाज एवं अन्य सामाजिक सुधारों के क्षेत्र में, जैसे पंजाब, जम्मू-कश्मीर आदि-आदि क्षेत्रों में वे खूब कार्य करती थीं। इसी प्रसंग में एक बार जब खुईरट्टा (खरेट्टा) में शुद्धि का एक ऐसा महान् अयोजन किया गया तो उस में सहस्रों व्यक्तियों की शुद्धि की गई। अर्थात् परिवारों के परिवार शुद्ध किये गये। वैसे थोड़ी बहुत संख्या में शुद्धि का कार्य तो प्रायः होता ही रहता था पर बड़ी सख्या में शुद्धि सम्भवतः कभी किसी विरले ही स्थान में हुई होगी। यह शुद्धि उन हरिजनों की थी जिन्हें कभी मुसलमान बना लिया गया था। पहले धीरे - धीरे आर्यसमाज की ओर से इन लोगों में सेवा आदि

कार्य किया गया। स्कूल खोले गए, फिर प्रचार आदि कार्य होने लगा तो इससे सब लोगों की पुनः अपने धर्म में वापिस आने इच्छा हुई। इस पर आर्यसमाज ने उन सबका हार्दिक स्वागत किया। और सामूहिक रूप से बड़े मान - सम्मान पूर्वक उन्हें अपनाने का आयोजन किया गया। यह अयोजन "खुईरट्टा" में हुआ जिस में आर्यसमाज कोटली से भी बसें आयी थीं। ऐसे अन्य अनेक स्थानों से भी पर्याप्त लोग वहाँ आए हुए थे। यों तो इस महान् कार्य में अनेकों का सहयोग था और वे उस महान् शुद्धि यज्ञ में उपस्थित भी थे, जैसे भाई परमानन्द, मेहता सावन मल जी, पं० बुद्धदेव जी मीरपुरी, महाशय गुशहाल चन्द जी, महात्मा अगस्त मुनिजी, पं० शमशेर सिंह आदि-आदि। इस कार्य में सबसे अगुआ तो श्री रामनाथ जी एडवोकेट ही थे पर पूज्या माता जी ने भी इस महान् शुद्धि यज्ञ में बढ़-चढ़ का ऐसा भाग लिया कि सब चकित रह गए। शुद्धि का विरोध बहुत हुआ। और तो और, ठेठ पौराणिक परिवार होने से पूज्या माता जी के परिवार ने भी इस का बड़ा विरोध किया, परन्तु पूज्या माता भागवन्ती जी ने साहस नहीं छोड़ा। वे हिम्मत से आगे बढ़ीं और इस शुद्धि समारोह के यज्ञ आदि कार्य में सोत्साह ऐसा अद्भुत कार्य किया कि सभी दाँतों तले अंगुली दबा गए। वे सब प्रायः पूज्या माता जी के व्यक्तित्व एवं कार्य से इतने प्रभवित हुए कि उनके हृदय से उनके प्रति स्नेह, सम्मान एवं कार्य से इतने प्रभावित हुए कि उनके हृदय से उनके प्रति स्नेह, सम्मान एवं पूजा के भाव उमड़ने लगे।

इस में कोई सन्देह नहीं कि इधर जब पूज्या माता जी ने इतनी लगन और रुचि से कार्य किया और उसके कारण जहां वे उस समय जन-जन के मान-सम्मान, स्नेह और श्रद्धा की भाजन बनीं वहां लाहौर

आदि में भीं वे सब के लिये स्नेह और आदर की पात्र बनीं। परन्तु इधर घर के बाहर जहां उनको इतना मान–सम्मान मिला वहाँ पारिवारिक क्षेत्र में हरिजनों (अर्थात् कभी मुसलमान बने हुओं) के साथ भोजन खाया है, हलवा खाया है, अतः ये अपवित्र हो गयी हैं, यह सोच कर इनकी पूज्या माता रूपदेयी जी इन को पहले खूब नहलाती, फिर अपवित्र मानकर इन को गंगाजल पिलातीं, पर तब भी इन्हें वे चौके से बाहर ही भोजन आदि देती थीं। मां के यह सब करने पर भी आप हंसते-हंसते उस भोजन को खा जातीं थीं। हां आगे चल कर तो फिर परिवार वाले भी आप के ही अनुयायी बन गये थे।

उन दिनों जब आप आर्य समाज का कार्य करती थीं, तो २८–३० मातायें बहिनें भी आप के साथ रहती थीं और आप उनके साथ मिल कर खूब आर्य समाज का कार्य करती थीं। इस शुद्धि पर आर्य समाज के कार्यकर्ताओं का मुसलमानों के साथ बड़ा भारी संघर्ष हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप श्री लाला रामनाथ जी एडवोकेट को बड़ी चोटें आयीं। सिर भी फट गया तो फिर कई टांके लगे। संघर्ष की ओर आगे बढ़ने से सब इसलिये बच गए कि वे शुद्ध होने वाले मुसलमान हरिजन बड़ी जोरों से घोषणा पूर्वक हम आर्यों में आ मिले। इस पर मुसलमानों को बहुत बड़ी निराशा हुई और वे शान्त हो गये।

पूज्या माता जी का कहना था कि ये ही लाला रामनाथ जी एडवोकेट आर्य समाज के बहुत बड़े दीवाने थे, अतः वे झूठे मुकद्दमे कभी नहीं लेते थे। सच्चे मुकद्दमे ही लेते थे। और उनमें जो भी

कुछ प्रभु की कृपा से मिलता था उसी पर ही वे सदा सन्तोष अनुभव करते थे। हैदराबाद के सत्याग्रह में इन के परिवार में एक ही समय भोजन बनता था और दूसरे समय के भोजन आदि की सब बचत ये हैदराबाद सत्याग्रह में भेज दिया करते थे।

जिन मुसलमान हरिजनों की शुद्धि लाला राम नाथ जी एडवोकेट ने उस समय बड़े बलीदानी भाव से की थी उन सब हरिजनों को बाद में भी उन्होंने सदा इतना प्यार दिया कि वे सब उस को गाते नहीं थकते थे। उनके मुकदमों में उन्होंने उनसे कभी एक पैसा भी नहीं लिया। वे मुफ्त ही उनके लिये लड़ते थे। वैदिक धर्म में उनके दीक्षित होने पर वे सदा उनका बड़ा आभार मानते थे। इधर उन्हीं की नाईं पूज्या माता जी कभी समय–समय पर जब उन्हें अनूठा प्यार मिलता था तो वे सब भी उधर उन्हें माँ जी कहते हुए हाथ जोड़–जोड़ कर उनके चरणों में अपने शिर को झुकाने में हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव करते थे पूज्या माता जी का कहना था कि वे सब जब हम में सम्मिलित होकर एक हो गए तो वे इतने प्रसन्न हुए कि मानो उन को जैसे कोई विचित्र प्रसाद मिल गया हो। और वह प्रसाद था प्यारा और न्यारा वैदिक धर्म।

इस प्रकार आर्य समाज के कार्यों में बढ़ चढ़ कर भाग लेने पर जहां स्थान-स्थान पर आप के प्रति लोगों की श्रद्धा बढ़ती रही वहां विधर्मी अनेकों मुसलमानों की आपके प्रति क्रूर दृष्टि भी बनती रही। तभी तो एक बार जब आपकी आंखों में कुछ तकलीफ हो गयी

तो तब आप हास्पिटल में अपनी आंखें दिखाने गयीं। वहां पर एक मुसलमान डाक्टर ने आप की आँखों में ऐसी दवाई डाली कि जिससे आंखे ही समाप्त हो जायें। दवा डालने पर आपकी बहुत दुर्दशा हुई। अतः आप पुनः हास्पिटल में आयीं और वहां के बड़े डाक्टर को आँखे दिखायीं। डाक्टर जी के पूछने पर जब माता जी ने सब बताया तो उन्हें बड़ा कष्ट हुआ और उन्होंने कहा कि –"इस में तो वह दवा डाली गयी है कि आंखे ही समाप्त हो जांये। आप यदि दो लाईन लिख कर हस्ताक्षर कर दें तो मैं अभी ही उस डाक्टर को सेवा से मुक्त कर दूंगा।" परन्तु माता जी बोलीं—"डाक्टर जी! मैं कभी मन से भी उसका बुरा नहीं सोच सकती, बुरा करना तो दूर की बात रही।" इस पर वे डाक्टर जी उन्हें धन्य-धन्य कह कर मौन हो गए।

ऐसे ही एक बार जब भाई रणवीर जी के श्वसुर श्री लाला धनीराम जी ने होशियार पुर में बहुत बड़ा यज्ञ रचाया था तो उसमें जहां अन्य अनेकों महापुरुष-महात्मा नारायण स्वामी जी, स्वामी गंगा-गिरि जी, स्वामी सत्यानन्द जी, स्वामी स्वतन्त्रतानन्द जी आदि पधारे हुए थे वहाँ आपको भी पूज्या माता मेला देवी जी (धर्म पत्नी महाशय खुशहाल चन्द) साथ ले गयी थीं। वहां एक दिन आपको कोई कट्टर पौराणिक भोजनार्थ ले गया। उस समय आपके साथ अन्य भी अनेक बहिनें थीं। वहां उस समय आपको किसी ने भोजन में विष दे दिया। बहुत जल्दी ही आपका शरीर काला पड़ने लगा। एकदम उल्टियाँ-दस्त लग गए। आप जल्दी ही दीना नगर के पास बहरामपुर गयीं, वहीं दवायें लीं और शरीर की एक बार पूरी

सफाई की, आदि-आदि। फिर दो-तीन दिन में वहीं पर ही व्यवस्था करके ६ मास का अदर्शन मौन रख लिया और सबको कह दिया कि "यदि मैं मर गयी तो उठाकर फूंक देना और अगर जीती रही तो फिर निकल कर आर्य समाज की सेवा करूंगी।"

मौन खोलने और फिर अपने सेवा कार्यों में जुट जाने के बाद आगे चलकर १६३६ में जब हैदराबाद का सत्याग्रह आरम्भ हुआ तो आप स्वामी आत्मानन्द जी के पास गयीं। स्वामी जी तब रावलपिण्डी समाज में ही थे। महात्मा नारायण स्वामी जी भी तब वहीं आर्य समाज में पधारे हुए थे। अन्य भी अनेक सज्जन वहीं उपस्थित थे। सम्भवतः हैदराबाद सत्याग्रह के सम्बन्ध में ही महात्मा जी स्वामी आत्मानन्द जी आदि से कुछ विचार-विमर्श करने आए हुए थे। आपने भी सत्याग्रही के रूप में हैदराबाद जाने के लिये सत्याग्रह के संचालक पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी से प्रार्थना की। बहुत आग्रह भी किया तो भी महात्मा जी ने आपको सत्याग्रह में जाने की अनुमति नहीं दी। उन्होंने बड़े स्नेह से कहा—"बेटी! एक तो इस समय हैदराबाद सरकार सत्याग्रहियों पर बहुत अत्याचार कर रही है। दूसरा इस समय सत्याग्रहियों की कमी नहीं, पर उनके लिये सब प्रकार की जो व्यवस्था होनी चाहिये, उसमें बहुत कमी है। अतः सत्याग्रह के लिये धन, अन्न, वस्त्र आदि साधनों की अत्यन्त आवश्यकता है, उसको देखते हुए बेटी! यदि आप सत्याग्रह न करके पचास हजार रुपये एकत्र कर इस सत्याग्रह की जड़ों में खाद-पानी देने का

प्रयास करें तो आपकी यह बहुत बड़ी सेवा होगी। बेटी मुझे आप पर विश्वास है कि आप वह सब कर सकती हैं।"

बस फिर क्या था। पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी की सत्प्रेरणा एवं आशीर्वाद लेकर आपने ऐसा ही करने का निश्चय किया। इस कार्य को करने में पूज्य माता जी को जो-जो कठिनाइयाँ आयीं, बाधाएं आयीं, यदि उन को यहाँ लिखा जाय तो विषय बहुत बढ़ जायेगा। पर फिर भी ईश्वर विश्वास के साथ मान-सम्मान की परवाह किये बिना वे सब आपत्तियों को बड़े धैर्य से सहती रहीं और बड़े उत्साह से कार्य करती रहीं। इसका परिणाम यह हुआ कि जनता ने आपकी भावनाओं पर वह सब कुछ समर्पण किया जिसकी आपको कल्पना भी नहीं थी।

इधर जब रावलपिण्डी से पूज्य स्वामी आत्मानन्द जी का जत्था हैदराबाद के लिये चला तो उसमें स्वामी शान्तानन्द जी, पं० विद्याधर जी स्नातक आदि कई महानुभाव थे। माता भागवन्ती जी भी धन संग्रहार्थ उसी जत्थे के साथ ही चल पड़ीं। उस जत्थे का जहलम आदि अनेकों स्थानों पर स्वागत हुआ। लोग धन देते रहे, पूज्य माता जी एकत्रित करके वहीं के अधिकारियों को देती रहीं और कहती रहीं कि—'शोलापुर महात्मा नारायण स्वामी जी के पास भेजो।" फिर आगे चलकर माता जी लाहौर के आस-पास नौशहरा, भिम्भव, जलालपुर जट्टाँ, जालानपुर आदि स्थानों पर चन्दा इकट्ठा करती रहीं। फिर आप जम्मू की ओर चल दीं।

चन्दा इकठ्ठा करने जब आप चकवाल, भवन, पाषाण पातशाह आदि गयीं तो वहाँ के अधिकारियों ने कहा कि—"चकवाल में तो

चन्दा हो चुका है, अतः अब यहाँ नहीं हो पायेगा। अतः आप आगे जायें।" इस पर माता जी ने कहा कि "आप मुझे समाज में सत्संग करने दो।" उन्होंने पहले तो मना कर दिया पर वहाँ की माताओं-बहिनों के यह कहने पर कि—"सत्संग करने दो, इसमें क्या बात है?" इस पर माता जी को उन्होंने सत्संग करने की अनुमति दे दी माता जी ने यज्ञ किया यज्ञ के उपरान्त एक भजन बोला और फिर जब अपने विचार रखे तो उनके विचारों का ऐसा सुन्दर प्रभाव पड़ा कि वहां के सब अधिकारी भी स्तब्ध रह गये। वहाँ की अनेकों माताओं, बहनों ने उनकी आन्तरिक तड़प सुनते ही अपनी-अपनी सोने की चूड़ियां, हार, अंगूठियाँ, कांटे, चांदी की पायजेब आदि-आदि उतार कर उनकी झोली भर दी। उन्होंने वह सब आभूषण एवं रुपये आदि वहीं के ही प्रधान एवं मन्त्री जी को दे दिये और कहा कि—"इन्हें बेचकर धन 'शोलापुर' भेज दो। मुझे केवल अमुक स्थान तक का किराया दे दो।' उन अधिकारियों ने तब अपनी धृष्टता के लिये पूज्या माता जी से पुनः-पुनः क्षमा माँगी।

आगे आप 'भवन' गयीं। वहां आपके साथ और भी ५-७ बहनें थीं। पहले उनको भिक्षा मांगकर रोटी खिलायी। प्रचार के लिये बात की तो वहां भी जब किसी रूप में समाज के अधिकारियों ने कुछ करने नहीं दिया तो माता जी ने चार आने मनादि वाले को दिये और कहा कि—"तुम यह मनादि कर दो कि समाज के बाहर यज्ञ-सत्संग आदि होगा·····।" बस फिर क्या था' लोग खूब आये। समाज के बाहर ही उन्होंने यज्ञ किया। दो-तीन भजन बोले, फिर जब अपनी

बात कही तो तब वहां भी आभूषणों से झोली भर गयी। उन्होंने अधिकारियों को वे सब दे दिये और बेचकर धन शोलापुर भेजने को कह दिया।

रात को फिर सत्संग हुआ और उसमें अधिकारियों ने पश्चाताप किया और उनसे क्षमा माँगी। रात के सत्संग में भी लोग खूब आये और सहायता दी। दूसरे दिन जब माता जी अपनी दो-चार बहनों के साथ जाने लगीं और बस पर चढ़ गयीं तो चलती बस एक बुढ़िया ने रुकवाई और इन सबको खूब दूध पिलाया, मिठाइयां खिलायीं और चांदी का खूब जेवर दिया। इस सब दृश्य को ड्राईवर एवं कण्डक्टर आदि भी बड़ी श्रद्धा से देख-देख कर विभोर होते रहे।

इस प्रकार ६ मास तक गांव-गाँव, नगर-नगर में आप धन इकट्ठा करती हुई राजोरी (पून्छ के रास्ते में नौशहरा से जो आगे है) पहुँचीं। यहां आपके नानके थे। आप उनके यहाँ गयीं तो उन्होंने कहा कि तू यहाँ मांग मत हमसे जो लेना हो, वह ले लो। तब मामा जी ने धन देकर घोड़ा और नौकर साथ कर दिया। रास्ते में माता जी कहती थीं कि—"मैं पानी पीने तालाब पर गयी तो जब मैं पानी पी ही रही थी, तब उस मामा जी के नौकर ने मुझे समीप आकर कहा कि-"तुम्हारी अण्टी में रुपया है, मैं यहां यदि तुम्हें मार दूं तो कौन तुम्हें बचाने वाला है?" इस पर माता जी का कहना था कि-'मैं मौन रही और फिर झट अपने घोड़े पर चढ़ी और मैंने घोड़े को खूब दौड़ाया और जल्दी ही तब मैं खरेटा पहुँच गयी जहां कि हमने सहस्रों मुसलमान बने हुए हरिजनों की शुद्धि की थी। उस समय वहां जो आर्य समाज

के प्रमुख और लगनशील कार्यकर्ता थे। वे थे सरकारी डाक्टर श्री मालिक राम जी। उन्हें मैंने सारा रुपया दे दिया और निवेदन कर दिया कि" इसे आप शोलापुर महात्मा नारायण स्वामी जी के पास भेज दो आदि-आदि।" इस प्रकार जब तक सत्याग्रह चलता रहा, माता जी ने तब तक अन्न नहीं लिया, केवल दूध ही लेती रहीं और खूब सेवा करती रहीं। और अगर कहीं दूध भी नहीं मिला तो गिला नहीं किया।

इस प्रकार हैदराबाद सत्याग्रह में प्रभु ने आर्यों की लाज रखी और अनेकों त्याग, तप और बलिदानों के उपरान्त आखिर उनकी शान से विजय हुई। इस सत्याग्रह के कार्य से निवृत्त होकर आप पूर्ववत् अपने आर्यसमाज के कार्य में फिर व्यस्त हो गयीं। परन्तु फिर भी आपकी भीतर की साधना की वृत्ति को देखकर पूज्य स्वामी शान्तानन्द जी ने आपको ब्रह्मचारी व्यास देव जी के पास भेजा। उन्होंने आपको शरण दी और ध्यान योग के मार्ग की विधि बताई। आपने उसको बड़ी श्रद्धा और उत्साह से सीखा और उनके प्रति हार्दिक रूप से कृतज्ञता का अनुभव करती हुई जहाँ प्रातः सायं साधना करती रहीं वहां सामाजिक कार्यों को भी बड़ी लगन से करती रहीं। आपकी इन्हीं सामाजिक कार्यों में अत्यन्त रुचि एवं समर्पण भाव को महात्मा हंसराज जी, भाई परमानन्द जी और लाला खुशहाल चन्द जी आदि ने खूब देखा सुना था। सो उन दिनों जब कि बंगाल में अकाल पड़ा था तो महात्मा हँसराज जी एवं महात्मा खुशहाल चन्द जी आदि की सत्प्रेरणा से आप बंगाल की ही दो लड़कियों ओमा, आरी को लेकर १६४२ में लाहौर नारी निकेतन में जा बैठीं। यह

नारी निकेतन कृष्ण नगर लाहौर में वहाँ खोला गया था जहां कि पहले पं० ऋषिराम जी ने दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय खोला था और फिर पीछे छोड़ दिया था। इस नारी निकेतन को पूज्या माता जी पूज्य महात्मा हंसराज जी की ही सुपुत्री माता चन्दन देवी जी के सहयोग से चलाती थीं। यह स्थान बख्शी टेकचन्द जी ने अपने माता-पिता की स्मृति में दान के रूप में प्रदान किया हुआ था। नारी निकेतन में पूज्या माता जी वहां रहने वाली सभी बहिन-बेटियों को अपनी बेटी समझ कर उनका सब प्रकार से ध्यान रखती थीं, उनका पालन-पोषण करती थीं। उनकी उत्तम व्यवस्था एवं स्नेह सहानुभूति का ही परिणाम था जो नारी निकेतन में जल्दी ही ७०-८० की संख्या हो गयी थी। पर इतने प्यार से सेवा आदि करने पर भी जब उनको कहीं-कहीं से यह सुनने को मिला कि—"यह भागवन्ती तो सबको देसी घी खिला-खिला कर एक ही दिन में सब कुछ लुटा देगी, और फिर यह तो आकर यहां ऐसी महन्त बन बैठी है कि कुछ ठिकाना ही नहीं आदि-आदि।" पूज्य माता जी का तो कुछ वैसे ही एकान्त सेवन को मन कर रहा था, कुछ ऐसी बातें भी कानों में पड़ गयीं तो फिर ऐसे निर्लेप प्राणी के लिये उस सब का छोड़ना कठिन तो होता नहीं है। अतः १९४४ में उन्होंने उसको सहज में ही छोड़ दिया और श्रीनगर में ईश्वर पर्वत पर हार्वन झील के पास आकर ३ वर्ष का लम्बा काष्ठ मौन रख लिया। अभी ढाई ही वर्ष पूरे हुए थे कि उन्हीं दिनों हिन्दू-मुस्लिम दंगों के कारण [1] पूज्य महात्मा गान्धी जी के संकेत पर

---

१ पूज्य महात्मा गान्धी जी १९४६ में कश्मीर गए थे तो आपने

उन्होंने हार्वन झील के पास का स्थान छोड़ दिया और फिर कोटली शहर के आर्य समाज में ही अपना अवशिष्ट मौन पूर्ण किया। इस मौन काल में आप एक-एक मास के उपरान्त एक दिन को कुछ समय के लिये बाहर आतीं और आने वालों को मिलकर उन्हें सांकेतिक सान्त्वना और सदुपदेश दे जातीं या कभी अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर एक आध बात सलेट पर भी लिख देतीं। मिलने के उपरान्त आप पुनः अपनी साधना में लीन हो जातीं। इन साधनों के दिनों में पूज्या माता मेला देवी (धर्मपत्नी महाशय खुशहाल चन्द) जी ने आपकी जो सेवा की, और जैसे श्रद्धा और प्रेम से की, उसको कभी भुलाया

अपने मौन काल में ही उन्हें ५०० रु० और एक अपने ही हाथों की कती-बुनी खद्दर की चद्दर भी बड़ी श्रद्धा से उन्हें भेंट की। उस समय बड़ी नम्रता से सलेट पर लिखकर माता जी ने उनसे प्रश्न किया कि आपने दक्षिणी अफ्रीका में माता कस्तूरबा जी को घर से क्यों निकाला था ? तो इस पर महात्मा जी बोले— "बेटी वह मेरी मूर्खता थी।" इस पर माता जी को बड़ी प्रसन्नता हुई। पुनः महात्मा जी ने उन्हें उपदेश दिया—"बेटी यह मौन का समय नहीं, देश की सेवा का है। रात-दिन समाज और राष्ट्र की आप जैसी देवियाँ सेवा करेंगी तभी कुछ बन पायेगा।" मौन के बाद यह सब करने का माता जी ने उन्हें "...... वचन दिया।......

नहीं जा सकता। वे एक-एक दाना गायत्री जप करती हुई चुनती और फिर अपने हाथों से चक्की पीसतीं, तब वह आटा आपको भेजती थीं। उन्हों ने इतना ही नहीं किया वरन् मौन के दिनों में तो प्राय: वे पूज्या माता जी के पास ही रहीं। वे माता जी के लिये वस्त्र धोती रहीं, उनका भोजन आदि पकाती रहीं तथा उन्हें अन्य सब प्रकार की सुख-सुविधायें पहुँचाती रहीं। पूज्या माता भागवन्ती जी का कहना था कि वास्तव में साधना के समयों में प्राय: जो उन्होंने मेरी सेवा की है उसके लिये मैं सदा हृदय से उन्हें साधुवाद देती रही हूँ।

इस प्रकार इस लम्बे ३ वर्ष के काष्ठ मौन को पूर्ण करने के उपरान्त कोटली में आपने एक बहुत बड़ा यज्ञ किया, उसमें प्रभु का आप ने हृदय से धन्यवाद किया।

इस लम्बे मौन के उपरान्त आप लाहौर भी जाती रहीं, नारी निकेतन के प्रति भी यथाशक्ति अपने उत्तरदायित्व को निभाती रहीं। पर विशेषकर आपने उन दिनों १९४७ में देश की बिगड़ती हुई दशा को देखकर नारियों को जगाया और देश की रक्षा के लिये कुछ कर गुजरने को प्रेरित किया। उन दिनों स्थान-स्थान पर आप जातीं, यज्ञ उपदेश, समाज-सुधार, राष्ट्र के प्रति उनके उत्तरदायित्वों को सोचने विचारने और तदनुसार बलिदानी भावनाओं से सेवा करने को सबको प्रेरित करतीं। सभी महानुभाव इनकी भावनाओं पर अपनी शक्ति एवं परिस्थिति के अनुसार हृदय से कुछ-न-कुछ कर गुजरने का ही सोचते थे। जीवन में बहिन-बेटियों की सब प्रकार की रक्षा-सुरक्षा

में अनेकों बार आपने अपने जीवन को भी ऐसे-ऐसे जोखम में डाला कि सामान्य जन का दिल वह सब देख-सुनकर दहल जाता था।

आपकी अपनी साधना में विशेष रुचि होने पर भी इन वर्षों की लम्बी मौन साधना के उपरान्त आपने कोटली में जहां कि आपका जन्म हुआ था, खूब सेवा की। उन दिनों दो-ढाई मास तक वहाँ खूब युद्ध चलता रहा। कोटली में थोड़ी बहुत फौज भी थी जिसके उस समय मुख्य व्यक्ति थे कैप्टेन रामप्रसाद, (राजपूत) श्री मेजर फकीर चन्द जी तथा मेजर बलदेव सिंह पठानिया।

उन दिनों माता जी ने बहिन-बेटियों को वहाँ से निकालने का खूब काम किया। एक बार मिलिट्री की जीप आ रही थी तो माता जी ने उसे रोका और कई लड़कियों को उनके सहयोग से निकाल लायीं। उन दिनों कोटली समाज में सब इकट्ठे थे। उनके लिये राशन पानी का प्रबन्ध भी करना पड़ता था। उनको भारत ले जाने का कार्य भी करना होता था। एक बार अचानक मुसलमानों ने इन सब पर हमला किया, गोलियां चलाईं तो इन मिलेट्री वालों ने उन्हें पकड़ कर बन्द कर दिया। इस पर कबायली आ गये और मास-सवा मास समाज में मोर्चा लगा रहा। वहां असुरक्षा देखकर सब श्री सोमराज जी के तिमंजले मकान में गए। इन दिनों ४८०० व्यक्ति उनके मकान में थे। भोजन फौजियों की सहायता से आता था। भोजन की मुश्किल हो गयी तो ५-५ मन भुने हुए चने और गुड़ आदि आता रहा। मिलेट्री वालों को पूज्या माता जी सदा यह उपदेश देती रहती

थीं कि–"बेटा ! इन सब को अपनी मां बहन वेटी समझ कर इन के सतीत्व की रक्षा करना तुम्हारा बहुत भला होगा ··।" मिलिट्री वाले भी पूज्या माता जी को पूजते थे और उन की ऊंची भावनाओं पर सब कुछ न्यौछावर करने को सदा तत्पर रहते थे।

एक बार का जिक्र है कि जब मिलिट्री नहीं पहुँची तो माता जी ने सब को इकट्ठा किया और सब को बड़ी धीरज दी, और साथ-साथ विष की पुड़ियां भी बांट दीं, विशेषकर माता बहिन वेटियों को। फिर उनमें उन्होंने महारानी पद्मिनी के समान भाव भरे। उन्होंने उन्हें कहा कि–"संसार में पवित्रता अर्थात् सतीत्व की रक्षा से बढ़कर कोई चीज नहीं है। यदि कोई ऐसी अवस्था आ जाए तो इसे खाकर सदा-सदा के लियें मर जाना पर अपनी लाज को मत खोना·····।" उन के इस उपदेश का बड़ा ही प्रभाव हो रहा था। पर इस उपदेश के देते - देते पीछे से सहसा केप्टेन राम प्रसाद आ पहुँचा और बोला कि–"माता जी ! अभी विष बांटने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि अभी केप्टेन रामप्रसाद जिन्दा है। अतः उसके रहते हुए कोई भी इन सब माता बहिन बेटियों का बाल बांका नहीं कर सकता। इस पर सबका मनोबल बहुत बढ़ गया, और तब फिर उस रात खूब देश भक्ति और प्रभुभक्ति के गीत होते रहे और सब अपनी रक्षा में सजग रहे। पूज्या माता जी का कहना था कि–"उन दिनों केदारनाथ जी साहनी भी हमारे पास थे, हम सब भोजन बनाते थे और वे सब खाकर खूब काम करते थे। मेजर बलदेव सिंह पठानिया ने खूब काम किया। मेजर फकीरचन्द ने भी खूब काम किया। उन की तो एक आंख भी इस कार्य में समाप्त हो

गयी । इस प्रकार अनेकों आपत्तियों में से गुजरते हुए लोग जैसे तैसे भारत पहुँचे और सब अपने लिये एवं अपने-अपने परिवार के लिये सोचने लगे । पर पूज्या माता जी का क्या कहना, वे तो जब यहां भारत आ गयीं तो विभाजन के उपरान्त विस्थापितों की दयनीय दशा को देख-देख कर आप से नहीं रहा गया । अतः गाँधी, नेहरू आदि-आदि अधिकारियों से मिल-मिल कर आप तब नाना प्रकार से धन-अन्न, वस्त्र आदि पदार्थों का संग्रह करतीं या फिर श्री लाला अमरनाथ जी महाजन आदि से क्रय करवा - करवा कर उसे कैम्पों में बांटती रहतीं । वैसे तो सरकारी जीप आपके लिये आती थी पर अगर वह समय पर न आ पाती, तो आप महाशय खुशहालचन्द जी की जीप पर यह सब सामान रख लेतीं और कैम्पों में बांटा करतीं । ऐसे समयों में प्रायः आपके साथ पूज्या माता मेला देवी जी या अन्य माताएं होतीं या आचार्य रामदेव (वर्तमान में स्वामी सत्यानन्द) जी या पं० त्रिलोकचन्द जी शास्त्री आदि होते थे । आप केवल उन विस्थापित मनुष्यों में अन्न वस्त्र वा दैनिक उपयोग की अन्य वस्तुएं मात्र बांट कर ही सन्तोष नहीं कर लेती थी वरन् आप तो इस से भी आगे बढ़ कर उन में यज्ञ कर-कर के , सत्संग लगा-लगा कर के, उन सब को धैर्य देतीं, सान्त्वना देतीं, उन में सहन शक्ति भरतीं, राष्ट्र भक्ति के उत्तम भाव भरती थीं । उस समय लोग आप के इस सेवा, त्याग और तपोमय ईश्वर परायण जीवन को देख-देख कर खिल जाते और तब वे सब आप के चरण छू-छू कर अपने को धन्य-धन्य मानते । पूज्या माता जी ने दिल्ली किंग्जवे कैम्प तथा करनाल आदि के अनेकों कैम्पों में उस समय दिन-रात एक कर के बड़ी लगन से सेवा की । इतना ही नहीं इस से भी आगे

बढ़ कर जब जब पूज्या माता जी के हाथों में उस समय दस, बीस, पचास वा सौ रुपये आ जाते तो झट किसी भी सुपात्र को देख कर कोई न कोई कार्य व्यापार उसे खोल दिया करतीं। ऐसे अनेकों व्यक्ति आज भी विद्यमान हैं जिन्होंने पूज्या माता जी के उन थोड़े से पैसों से कार्य आरम्भ कर दिया वे अपने पुरुषार्थ एवं प्रभु कृपा से आज धनी मानी हैं, आज सहस्रों एवं लाखों के स्वामी हैं। ऐसे महानुभाव सदा उनको स्मरण कर-कर के उनके प्रति हृदय से सहज ही कृतज्ञ भाव से ओत-प्रोत हो जाते हैं और अपने को धन्य मानते हैं, यह सोचकर कि 'उस दिव्य माता ने हमारी जड़ों में खाद पानी दिया है।"

१९६५ में भी पूज्या माता जी ने राष्ट्र रक्षा कोष में खूब आभूषण आदि इकट्ठे हो जाने पर उस समय के प्रधानमन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री को दिये और हार्दिक प्रार्थना की कि–"इन को राष्ट्र हित में लगा देवें।"

पूज्या माता जी का हृदय तो इतना कोमल था कि वे किसी का दुःख नहीं सह सकती थीं। वे जब किसी का कष्ट देखतीं तो उसे अपना ही कष्ट समझ कर तुरन्त उसे तन मन धन से सहयोग प्रदान कर दूर करने का यत्न करती थीं। अपने से कभी यदि उन का कुछ नहीं हो पाता था तो अन्य किसी के द्वारा भी उस दुःखी के कष्ट निवारण करने का प्रयास करती थीं। यद्यपि ऐसे भी कई महानुभाव आ जाते थे जो उनके इस कोमल एवं दयालु स्वभाव का दुरुपयोग कर जाते थे। परन्तु फिर भी वे "उन की वृत्ति उन के साथ" यह कह

कर अपने स्वभावानुसार प्रयत्न अरतीं कि उन से सब का भला ही होता रहे।

उन्होंने कई बार टी. बी. के हस्पतालों में जा-जा कर खूब सेवा की है। संसार के अन्य व्यक्ति ही नहीं वरन् घर वाले भी जिन रोगियों से घृणा करने लगते थे उनके पास भी रात के अन्धकार में जा-जा कर रात - रात की डयूटी दे - दे कर वे उन की खूब सेवा-शुश्रूषा करती रहीं और प्रातः होते ही तब वे फिर अपने निवास स्थान चली आती रहीं। पूज्या माता जी का अतिविस्तृत क्षेत्र था, क्योंकि उन का कुछ ऐसा जीवन था कि वे जिधर को भी निकल जातीं उधर ही पग - पग पर उनके सरल सौम्य करुणा भरे हृदय को कोई न कोई कार्य मिल जाता और तब उस में वे उस समय इतनी खो जातीं कि जैसे उन को कोई और अपना कार्य ही न हो, जब कि उनके चहुँ ओर अपने ढंग के अनेकों कार्य विद्यमान रहते थे।

ऐसे बड़ी लगन पूर्वक सेवा आदि कार्यों को जब कभी वे कर के आती थीं और सौभाग्य से प्रभु भजन में बैठ जाती थीं तो तब ऐसा विभोर होकर उस प्यारे प्रभु का गुणगान करती थीं कि आप के साथ अन्य भी सब उस प्रभु भजन में तन्मय हो जाते थे।

विभाजन के उपरान्त इन नानाविध जनहित के कार्य करने के उपरान्त अपनी आन्तरिक वृत्ति के अनुसार आप १६४६ में जब मोहन आश्रम हरिद्वार आ पहुँची तो आपने वहां

गायत्री तथा सामवेद का एक वृहद्‌यज्ञ किया जो कि कई दिनों तक चला। उन दिनों आप पूज्य महात्मा हंसराज जी की कुटिया में ठहरी हुई थीं । यज्ञ के उपरान्त ही आप ने वहां मौन व्रत रखा और तब आप वहाँ निरन्तर जप-तप करती रहीं । इस के अनन्तर आप ने इसी मोहन आश्रम के ही सम्मुख वर्तमान विशुद्ध आश्रम में भी मौन रखा। वहां मौन रखने पर आपके मन में एक ऐसा विचार आया कि–' क्यों न एक ऐसा आश्रम खोला जाय कि जहाँ पर रह कर, जहां मैं स्वयं स्वतन्त्रता पूर्वक एकान्त रहकर मौन पूर्वक जप-तप आदि कर के अपने जीवन का उत्थान कर सकूं वहाँ और भी मेरी तरह अनेकों माताएं बहिनें वहाँ आ आ कर आध्यात्मिक दृष्टि से अपना विकास कर सकें, अपना उत्थान कर सकें ।

इस विचार के हृदय में उत्पन्न होने पर उन दिनों आप सहसा किसी कार्यक्रम पर बम्बई गयीं। वहाँ आपने माता आज्ञावन्ती, सेठ ताराचन्द जी लोहे वालों के घर पर १८ दिवस पर्यन्त यज्ञ किया। वहां आप प्रातः काल सब साधकों को अभ्यास कराती रहीं। अभ्यास के उपरान्त आसन, प्राणायाम आदि सिखाती रहीं। इस प्रकार योगाभ्यास प्रशिक्षण देने के अनन्तर आप यज्ञ कराती थीं। माता आज्ञावन्ती जी पर उस सारे कार्यक्रम का कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने मूर्तिपूजा छोड़ दी और अपनी सभी मूर्तियों को तब उन्होंने समुद्र में डाल दिया। ऐसा करने पर वे बोलीं कि–"जो आनन्द मुझे यज्ञ में मिला वह अन्यत्र नहीं मिला । " वे पूज्या माता जी के जीवन और कार्य से कुछ ऐसी प्रभावित हुईं कि वे आगे चलकर बहुत कुछ दिन पूज्या माता जी के साथ रहीं और उन से बहुत कुछ सीखती

रहीं। प्रसंगवश उस समय यज्ञ की पूर्णाहुति के उपरान्त जब आश्रम खोलने की बात चली तो वहीं पर ही किसी ने दो, किसी ने तीन, किसी ने चार और किसी ने पांच-पांच वा छः-छः सहस्र रु० लिखाना आरम्भ कर दिया, परन्तु माता जी बोलीं कि—' मेरी वहिनो एवं भाईयो ! मुझे ऐसे पैसा नहीं चाहिए। जब आश्रम बनेगा फिर जैसी आप की श्रद्धा होगी तब देख लूंगीं, अभी तो कुछ हुआ ही नहीं।" इस पर सब मौन हो गये। तब पूज्या माता जी ने हरिद्वार आकर सहस्र किसी एक से और पाँच सौ किसी दूसरे से लेकर १९५० में सप्तसरोवर मार्ग पर आश्रम के लिये भूमि ले ली। भूमि लेने पर उस में झौंपड़ी बना कर कुछ दिन मौन रखा, यज्ञ किया और साधना की। इस आरम्भिक यज्ञ आदि में पूज्या माता जी ने किसी से कुछ नहीं मांगा। यहीं की समिधाओं से यज्ञ किया. यहीं के ही पर्णों से आहुतियाँ दी और यहीं के शाक=पातों का ही भोजन किया। इस स्थिति का जब आप के श्रद्धालुओं को बोध हुआ तो फिर घृत सामग्री, अन्न आदि का प्रवाह ही बहने लगा और तब पूज्या माता जी ने खूब बड़ा यज्ञ किया और ऋषि लंगर आदि करके अनेकों को भोजन आदि प्रदान किया। व्यास आश्रम हरिद्वार का प्रथम उद्घाटन यज्ञ १९५० में हुआ और वह भी अमरूद के वृक्षों के नीचे हुआ। इस प्रारम्भ के यज्ञ में पूज्य स्वामी आत्मानन्द सरस्वती और पं० विद्याधर जी स्नातक तथा उनके साथ और भी दो पण्डित यमुनानगर वैदिक साधन आश्रम से पधारे हुये थे। ऋषिकेश से ब्रह्मचारी व्यासदेव जी (वर्तमान में स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती) भी पधारे हुये थे। ऐसे और अनेकों महानुभाव भी उस समय सोत्साह आये थे। इतना बड़ा यज्ञ इन महापुरुषों ने बड़ी श्रद्धा और प्रेम से कराया तथा मुझे हृदय से आशीर्वाद दिया, पर

पूज्य स्वामी आत्मानन्द जी एवं पं० विद्याधर जी ने एक पैसा भी दक्षिणा नहीं ली। बहुत आग्रह करने पर भी उन्होंने दक्षिणा नहीं ली और वे बोले—'बेटी ! आप जो आर्य समाज की इतनी लगन से समर्पणभाव से सेवा करती हैं, वह दक्षिणा आप की क्या कम है जो हम यह दक्षिणा भी आप से लें ! , बेटी! चाहिये तो यह कि हम इस विषय में आप की पर्याप्त सहायता करें, पर वह तो करें नहीं और उलटा दक्षिणा लें ! "।

इस प्रकार उन सब महापुरुषों के आशीर्वाद से फिर वहाँ प्रतिवर्ष यज्ञों का एक क्रम सा चल पड़ा। उधर कुछ साधना का भी बहुत सुन्दर कार्यक्रम चलने लगा।

निवास की कुछ सुविधा के लिये सर्वप्रथम ला० अमर नाथ जी महाजन ने पूज्या माता जी के लिये एक कमरा बनवा दिया जिस में कि वे रहा करती थीं। फिर धीरे - धीरे रसोई आदि आवश्यक चीजें बनीं, यज्ञशाला बनी। प्रति वर्ष यज्ञ होने लगे तो उन में श्रद्धा भक्ति से लोग भी आने लगे। सन् १९५१ में फिर यमुनानगर से विद्वान् पण्डित आये। १९५२ में महाविद्यालय ज्वालापुर से विद्वान् आये। १९५३ में पं० राजगुरु जी आ गये। आगे चल कर श्री स्वामी विज्ञानानन्द जी सरस्वती 'वैदिक भक्ति साधन आश्रम रोहतक" से पधारे। ऐसे अनेकों ज्ञानी विद्वान् वहाँ आते रहे और यज्ञ प्रवचन आदि द्वारा सभी सत्संग प्रेमी महानुभावों को कृतार्थ करते रहे। इधर माता जी अपनी सेवा-शुश्रूषा के द्वारा जहाँ विद्वानों का सदा सम्मान करती रहीं वहाँ वे सभी सत्संग प्रेमी महानुभावों की भी बड़े लाड - प्रेम से सेवा करती रहीं।

१९५२-५३ में पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी ने स्वामी

विवेकानन्द जी को संन्यास दिया और उन्हें व्यास आश्रम में पूज्या माता जी की रक्षा एवं सहयोग के लिये ऐसे रख दिया जैसे प्रभु गुलाब के फूल के चहुँ ओर कांटे रख देता है या जैसे कि बुद्धिमान् कृषक खेत की रक्षा - सुरक्षा के लिये चहुँ ओर बाढ़ लगा देता है।

महात्मा आनन्द स्वामी जी के सम्बन्ध में कभी बड़े कृतज्ञ हृदय से पूज्या माता जी कहा करती थी कि–"भाई बने तो ऐसा बने जैसे कि वे थे। उन्होंने जीवन के अन्त तक मेरे प्रति अपने पूर्ण उत्तरदायित्वों को निभाया।" और तो और वे जब कुछ अस्वस्थ रहने लगे तो प्रायः श्री माननीय नारायण दास कपूर जी से कहने लगे कि–"हमारा तो अब चला-चली का मेला है, देखो! बहन भागवन्ती जी के आश्रम में बराबर साधना चलती रहे। इस के लिये आप को कितने भी आवश्यक कार्य क्यों न छोड़ने पड़ें तो भी बड़ी श्रद्धा और लगन से यहां समय दे–दे कर साधकों को योग की शिक्षा देते रहना और उसका बढ़िया से बढ़िया प्रबन्ध करते रहना।" सो माननीय कपूर जी भी उन के आदेश का हृदय से पालन कर जितना कुछ उन से सम्भव होता है, वे करते रहते हैं। वे जहाँ स्वयं योग सिखाते हैं, वहां अपने से अतिरिक्त भी सहायक महानुभावों को बुला-बुला कर साधकों को अपने उद्देश्य के प्रति सजग करते रहते हैं। पूज्या माता जी भी उन्हें खूब मान–सम्मान देती रहीं।

इधर जहाँ पूज्या माता जी आश्रम में आने वाले महानुभावों को साधना स्वाध्याय की प्रेरणा करने लगीं और उधर उनके लिये

उचित से उचित साधन एवं वातावरण प्रस्तुत करने लगीं तो फिर लोग भी बड़ी ही श्रद्धा एवं उत्साह से बराबर आने लगे।

तो मैं कह रहा था कि इधर कुछ आश्रम में आने वालों का उत्साह बढ़ ही रहा था उधर प्रभु की कृपा से महात्मा आनन्द स्वामी जी भी कृपालु हो कर अपना पर्याप्त समय अर्थात् न्यून से न्यून एक मास आश्रम में देने लगे, और उन दिनों बड़े स्नेह से स्वयं ही साधना सिखाने लगे तो फिर साधना की व्यवस्था के उत्तम हो जाने पर लोगों की रुचि और भी बढ़ गयी। अतः अब यहाँ के यज्ञोत्सवों का नाम ही साधना शिविर पड़ गया। जीवन के क्या ही सुन्दर एवं सौभाग्य-शाली वे दिन थे जब कि पूज्या माता जी सभी शिविर में आगन्तुक महानुभावों के उदर में अन्न-दाना पानी डालती थीं सौर पूज्य महात्मा जी हंसते-हंसते सब में उच्च आध्यात्मिक विचारों की वर्षा करते रहते थे।

यद्यपि पूज्य माता जी का आश्रम मैं (लेखक) ने आज से लगभग १९ वर्ष पूर्व गुरुवर्य पं० विद्याधर जी के साथ हरिद्वार आने पर देखा था, परन्तु सन् १९६५ से एक वर्ष बीच में किसी कारण वश छोड़ कर मैं प्रति वर्ष होने वाले साधना शिविर पर निरन्तर आता रहा हूँ। इन सब अवसरों पर मेरा प्रिय जयदेव भी मेरे साथ रहा। हम दोनों मिल कर सदा वह सब कुछ करने का प्रयास करते रहे जैसा कि पूज्य महात्मा आनन्द स्वामी जी एवं पूज्या माता जी हमें आदेश देते रहे।

इस आश्रम में शिविर पर प्रायः अनेकों विद्वान् पधारते रहे

और उन के उपदेशों को भी सब बड़े प्यार से सुनते रहे। जैसे महात्मा आनन्द स्वामी जी, स्वामी सच्चिदानन्द जी, पं० ऋषिराम जी, स्वामी धर्मानन्द जी, महात्मा आनन्द भिक्षु जी, अमर स्वामी जी, स्वामी मुनीश्वरानन्द जी, स्वामी शिवानन्द जी, महेन्द्र शास्त्री जी, पं० राजगुरु जी, महात्मा दयानन्द जी, चैनमुनि जी, कोकिल-कण्ठ ब्रह्मचारी महेश जी आदि-आदि।

इस आश्रम में जहाँ अनेकों ज्ञानी, विद्वान्, संन्यासी, योगी आदि-आदि पधारते थे तो पूज्या माता जी कैसे-कैसे इन का मान-सम्मान करती थीं, कैसे-कैसे उन की आवभगत करती थीं, वह सब एक देखने वाली बात होती थी। जहां उनका स्वागत अनुपम था वहाँ उनकी विदाई भी दिव्य थी।

उनके पास जितने भी सत्संगी, माताएं बहिनें और भाई आदि आते थे उन को वे कितना प्यार देती थीं, कितना लाड देती थीं, यह भी एक देखने वाली बात होती थी। वे इन सब को ऐसे विदा करती थीं जैसे कि कोई माँ अपनी बेटियों को विदा करती है...।

उन्हें सचमुच इन दिनों कभी अपने खाने, पीने, पहनने, ओढ़ने आदि की चिन्ता नहीं होती थी। उनकी केवल उन्हीं दिनों की बात क्या कहें, वैसे भी उनका सदा यही हाल रहता था, पर इन दिनों का तो कुछ ठिकाना ही नहीं था।

सच पूछो तो उन्हें देना आता था, उन्हें खिलाना आता था, उन्हें स्नेह करना आता था, उन्हें लाड-प्यार करना आता था, उन्हें सेवा करनी आती थी, उन्हें सदा जहां त्रुटि करने से बचना आता था,

वहां जाने-अनजाने, चाहे-अनचाहे यदि कोई त्रुटि भी हो जाती थी तो उन्हें अति नम्र हो कर क्षमा मांगना भी आता था, और फिर बस उनके इसी गुण पर सब पिघल जाते थे-। "बेटा बुरा मत मान जाना, तुम्हारी मां अनपढ़ ही तो है, तुम्हारी मां नासमझ ही तो है, तभी तो यह भूल कर जाती है, आगे यह प्रयत्न करेगी कि फिर गलती न हो ।"

इस में कोई सन्देह नहीं कि इतने वर्षों में मैंने देखा कि वे बाहर भले ही कभी प्रचार आदि करती हों पर जहां उन्हें बोलना आता था वहां उन्हें चुप हो जाना–मौन हो जाना, उस से भी अधिक आता था! क्योंकि आखिर अनेकों बार उन्होंने मौन रह - रह कर अनेकों स्थानों पर खूब जप - तप किया था। क्या ऋषिकेष वैदिक आश्रम में, क्या गुरुकुल पोठोहार में, क्या बहराम पुर में, क्या हार्वन झील के समीप ईश्वर पर्वत पर आदि - आदि .....। सच पूछो तो वे जिव्हा से नहीं बोलती थीं पर उनका जीवन बोलता था, उन के कार्य बोलते थे, उन की सेवा बोलती थी, पर कोई सुने तो सही जरा उनके जीवन को। मैं जब उन्हें स्मरण करता हूँ तो मुझे तब वेद का वह मन्त्रांश याद आ जाता है–"स्वेन क्रतुना सम्वदेत"–मनुष्य जीवन से बोले, कर्म से बोले आदि - आदि। वेद के इस वचन की ही सचमुच वह साक्षात् मूर्ति थी।

पूज्या माता जी के कारण आश्रम कुछ ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे छुट्टियों में बच्चे अपने होस्टलों से माँ के पास घर आए हुए हों।

आश्रम में सब को बहुत स्नेह लाड और सम्मान मिलता था तभी तो सभी सत्संगी भाई बहिनें और मातायें बड़ी श्रद्धा, प्रेम और उत्साह से आते थे। मैं किन - किन का नाम गिनाऊं। बम्बई से

बहिन ज्योत्सना, कानपुर से बहिन कमला मेहरा, होशियारपुर से बहन सरोज जी, लुधियाना से श्री भाई रामनाथ जी, माता जी, सरदार प्रीतम सिंह जी, बहन जी, माता सत्यवती जी, दिल्ली मिलाप परिवार, श्री गम्भीर जी, माता सावित्री जी, श्री कपूर जी, माता सावित्री जी, ऋषिकेश से बहिन लता और अरुणा (सिखाने के लिये और स्वयं भी लाभ के लिये) बहिन नरिन्द्र जी, फरीदाबाद से श्री डी. एन. आहूजा, बहिन सरला जी, देहरादून से माता शकुन्तला जी, मु० नगर से अशोक बहन जी आदि - आदि अनेकों महानुभाव आते थे और इस आश्रम को अपना ही आश्रम - अपनी ही माँ का घर समझ कर यहाँ निवास करते थे तथा इस को अपने तन मन धन से हरा-भरा रखने का हार्दिक प्रयास करते थे। आज भी इसे 'हमारी माँ का आश्रम है, अतः वैसा कर रहे है। इसी का तो परिणाम है जो आज यह आश्रम इस रूप में वर्तमान है। और सम्भवतः यह आश्रम इस से भी और अधिक बढ़ जाता, परन्तु वे ही कुछ ऐसी विरक्त थीं, संकोची स्वभाव की थीं, अतः ग्रहण करने से जहां तक सम्भव होता था, वे बचती थीं।

यहां लोकल में भी श्री देवनदास जी एवं उन के ही सुपुत्र श्री देश कुमार आदि, डाक्टर विजय कुमार योगी फार्मेसी, भाई मोहन लाल जी ज्वालापुर, श्री भाई सुरेन्द्र मेहता जी, एवं वानप्रस्थाश्रम के कुछ विशिष्ट व्यक्ति आदि सब लोग भी यथा शक्ति मूक भाव से आश्रम को देखकर तृप्त होते एवं उस की सहायता करते थे। और अब भी कर रहे हैं।

पिछले वर्ष किसी प्रभुभक्त एवं पूज्य माता जी के श्रद्धालु एक

सेवक ने अपने मूक हार्दिक सहयोग से मुझे 'पूज्या माता जी की लघु जीवन गाथा पूर्वक एक अध्यात्म पुस्तक, प्रकाशित करने का हार्दिक आग्रह किया। सो तदनुसार कुछ थोड़ी सी सामग्री तो मुझे आदरणीय बहिनों से [माता जी की बेटियों से] मिली। फिर सितम्बर में सहसा गुरुवर पं० विद्याधर स्नातक की जब यमुनानगर में मृत्यु हुई तो हम इक्ट्ठे वहां पर गये। वहां रास्ते में बस में बैठे-बैठे ही मैं पूज्या माता जी से उनकी सब जीवन गाथा सुनता रहा और नोट करता रहा। कुछ फिर रूग्णावस्था में उनके पास जाता रहा, तो उस विषय में अपने सन्देह मिटाता रहा। यद्यपि कभी - कभी माता जी मौन हो जातीं, पूछतीं–। "अच्छा बता तू क्या करेगा…?" मैं माता जी से कहता "आप बोलती रहें यह जीवनी ही हमारी अमूल्य निधि है–।" सो उसी का परिणाम है जो कुछ मैं आप सब के सम्मुख यह रख सका…।" मैंने जीवन में जितना ईश्वर विश्वास उस माँ में देखा ऐसा बहुत विरलों में देखने को मिलता है। यों तो अनेकों ऐसे महात्मा हैं जो स्वयं तो पैसों को छूते नहीं, पर बोरी के नीचे रखवा लेते हैं, या चेलों से ग्रहण करा कर बैंको में धर देते है, पर ऐसे कोई विरले होते हैं जो पैसे के आने पर भी उस में फंसते नहीं, उस पर साँप बनकर बैठते नहीं। उन के सारे जीवन की कहानी ही यही है कि अर्थों में रह कर भी अर्थों से वह ऊपर रही।

ऐसी पूज्या माता जी जहाँ स्वयं पर्याप्त सेवा, सत्संग, दान, पुण्य, जप, तप आदि करती थीं वहाँ अन्य सब को भी इस विषय में निरन्तर प्रेरणा करती रहती थीं।

आपको अपने जीवन में अनेकों महापुरुषों का सम्पर्क मिला, क्या धार्मिक, क्या राजनैतिक, पर अपने विनम्र स्वभाव के कारण आप उन सबसे सदा ज्ञान, अनुभव लेती रहीं और उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा अभिव्यक्त करती हुई आगे बढ़नी रहीं। हार्वन झील के समीप ईश्वर पर्वत पर जब आप अपना सुदीर्घकाल का मौन, जप-तप कर रही थीं तो उन्हीं दिनों बापू जी उधर आए तो आप उन्हें बड़ी श्रद्धा से मिलीं, और ५०० रु० के साथ अपने ही हाथों की कती-बुनी चद्दर उन्हें भेंट की। ऐसे पं० जवाहर लाल नेहरू को भी एक थान खद्दर का पहनने को दिया तथा श्री लाल बहादुर शास्त्री जी को भी, आदि-आदि। पर धार्मिक एवं राजनैतिक सभी ऐसे अनेकों महान् पुरुषों के प्रति इस प्रकार अपने जीवन में श्रद्धा आदि अभिव्यक्त करते हुए जब चित्र फोटो आदि लेने का प्रसंग आता तो आप झट पृथक् हो जातीं। क्योंकि आप अपने जीवन में प्रदर्शन से सदा दूर रहती थीं। उनकी इस ऊंची वृत्ति को लेखक ने उनके जीवन के अन्तिम दिनों में पर्याप्त अनुभव किया है।

लगभग १५-१६ वर्षों से मैं (लेखक) आपके आश्रम में निरन्तर आता रहा हूँ। मैं इन वर्षों में जो आपका स्वरूप देखता रहा वह सदा मुझे अनोखा ही लगता रहा। यद्यपि मैंने जीवन में बहुत से आश्रम देखे-भाले, संस्थायें देखी-भालीं, बड़े-बड़े संन्यासी विद्वान् तपस्वी आदि-आदि देखे पर जैसा ईश्वर विश्वास मैंने पूज्या माता जी में देखा ऐसा किन्हीं विरलों में होता होगा! आपके आश्रम में न तो कोई दानपात्र था, न ही कोई रसीद बुक थी, न ही आपने दान की आवश्यकता

के सम्बन्ध में एक भी शब्द कभी कहा, न ही कहने की इच्छा की, न ही किसी से कहलवाया। यदि आश्रम के हित की दृष्टि से किसी ने ऐसा करना भी चाहा तो आपने उसे यह सब करने से रोका अवश्य है। जो कुछ भी श्रद्धा से किसी ने दिया, उसे स्वीकार कर आश्रम एवं आश्रम में आने वाले महानुभावों के हित में लगा दिया, नहीं कुछ मिला तो किसी से मांगा नहीं। कोई ५ देता तो घोषणा नहीं होती, कोई १०० दे जाता तो घोषणा नहीं होती। फिर आश्रम का कोई बैंक बेलेंस भी नहीं था। १ ऐसी-ऐसी विचित्र पूज्या माता जी की इस सम्बन्ध में घटनाएं हैं कि जिनसे हमें बहुत बड़ी-बड़ी शिक्षायें मिल सकती हैं। पर इस समय मैं उनकी चर्चा यहीं छोड़ता हूँ। इस आश्रम का कभी कोई बैंक बैलेंस नही रहा, इसका एक कारण यह रहा कि पूज्या माता जी का हृदय इतना कोमल था, इतना सरल और दयालु था कि वह किसी का सामान्य सा भी कष्ट देखने पर तुरन्त उस पर द्रवित हो जाता था। ...

पिछले ही वर्ष की घटना है कि कुछ ही दिवस पूर्व जब आप आश्रम के शिविर के लिये आयीं तो एक गृहस्थ आप के समीप पहुँचा। उसने जब अपनी दयनीय दशा का वर्णन करते हुए कहा कि–' माता जी ! घर में आटा नहीं, दाल नहीं, पहनने को–लाज ढकने को अब तो वस्त्र भी नहीं, बच्चे की फीस नहीं आदि-आदि।" यह सब सुनकर माता जी का हृदय ऐसा द्रवित हुआ कि उन से फिर रहा ही नहीं

१–आज भी सभी आश्रमों के कार्यकर्ता हार्दिक रूप से यह प्रयत्न कर रहे हैं कि आश्रम पूज्या माता जी के आदर्शों पर ही चलता रहे।

गया। अपने यहाँ भी स्थिति ऐसी थी, अत: अपने आश्रम की ही एक माता को साथ लेकर पड़ोस के आश्रम में निवास करने वाली एक माता से बोलीं कि-"बहिन ! मुझे १०० रुपये ऋण के रूप में दे दो, इसी मास आने पर आप को मैं दे दूंगी ।" उस माता के मना करने पर जब आप अपने ही आश्रम में उदास हो कर वापिस आने लगीं तो आप के साथ अपने ही आश्रम की जो माता वहीं गयी थीं, वे ही बोलीं—"माता जी ! आप ने मुझे क्यों नहीं कहा…? इस पर माता जी ने कहा–"अच्छा, तुम ही दे दो।" इस के उपरान्त वे उन से १०० लेकर बाजार गयीं और उस गृहस्थ के लिये पहले आटा, दाल आदि-आदि खाद्य पदार्थ लायीं, कपड़े लायीं, और उन के बच्चे के लिए फीस आदि दे आयीं तब कहीं उन के हृदय को सन्तोष हुआ। यह स्थिति तो उस समय की थी जब के १५-२० दिन बाद होने वाले साधना शिविर का भार विशेष आपके सिर पर था। पर वह भी सब प्रभु ही करेगा, यह सोचकर उन्होंने वर्तमान में ही अपनी आन्तरिक दिव्य भावना को खाद-पानी देकर अपने आप को हरा भरा बनाया। इतना ही नहीं जीवन की अन्तिम रुग्णावस्था में भी जब कि आप स्वयं सब प्रकार से विपत्ति से आक्रान्त थीं तो उन दिनों में भी जब आप के पास बहिन अशोका जी मुजफ्फर नगर से आयीं तो स्वास्थय आदि पूछने के उपरान्त जब प्रणाम कर, जाते समय उन्होंने उन्हें पूछा—"माता जी ! मेरे योग्य कुछ सेवा, कुछ आदेश है ?" माता जी-"वेटी करोगी ?" अशोका बहिन जी–"माता जी हृदय से करने का प्रयास करूंगी।" माता जी "अच्छा वेटी ! हरिद्वार खड़खड़ी में अमुक परिवार है, उसके बच्चे की फीस भेज दिया करना…।" बहिन अशोका जी–'पूज्य माता जी

का यह आदेश है, यह उपदेश है, यह विचार कर वे जैसे-तैसे पूछ-ताछ कर वहाँ गयीं। वहां उस परिवार की पात्रता देख कर वे मुग्ध हो गयीं और वहाँ रुपये दे दिये, तथा आगे के लिये भी वे उन्हें धीर बन्धा आयीं।"

मुझे बताओ ! अपने शरीर की ऐसी जर्जरीभूत अवस्था हो रही हो पर तब भी जिस को दूसरों की शिक्षा की चिन्ता हो, दूसरों की सुख-सुविधा की चिन्ता हो, देखने आने वालों के भोजन एवं आवभगत की चिन्ता हो, तो ऐसे दिव्य प्राणी का प्रभु कितना अपना होगा ? एक ब्रह्मचारी दिल्ली आप को देखने गया तो—"हाय बिचारे ने कैसे और कहां से किराये का प्रबन्ध किया होगा मुझे देखने आने के लिये, बस माता जी अपना दुःख भूल कर उसी की चिन्ता में लग गयीं और उन्हें सब दिया दिलाया। जीवन के उन अन्तिम रुग्णावस्था के दिनों में भी प्रायः मेरे जैसा कोई व्यक्ति उस महान् आत्मा के पास जाता था तो उसे बहुत कुछ सोचने समझने और सीखने को वहाँ मिलता था। मेरे जैसा कोई व्यक्ति पूज्या बहिन विमलाजी एवं बहिन शान्तिजी से पूछता है कि-"हमारे योग्य कुछ सेवा, क्योंकि रोग में तो खर्चा ही खर्चा होता है, तो उन बहिनों का कहना होता है कि-"भाई साहब ! क्या कहें-माँ जी के लिये जब कोई डाक्टर आता है वह चाहे डा० सुभाष चन्द्र गुप्ता हो या डा० सत्यपाल गुप्ता हो या फिर अन्य कोई हों, पुनः-पुनः प्रार्थना करने पर भी, हाथ जोड़ने पर भी वे फीस नहीं लेते, औषधियों के पैसे नहीं लेते, और उल्टा हाथ जोड़ कर कहने लगते हैं—"यह माँ क्या अकेली तुम्हारी ही है ? सच बात तो यह है कि इन्होंने जो भी कुछ—जितना भी कुछ किया है वह हमारे लिये ही किया है, अतः आप इस विषय में मौन

ही रहें।" इस पर फिर हम मौन हो जाती हैं। भाई साहब ! यों ईश्वर के विधान में तो कोई बाधा नहीं डाल सकता, पर फिर भी माता जी के लिये जो कुछ भी इन डाक्टरों ने किया उसके लिये हम सदा इनकी कृतज्ञ रहेंगी ।

सचमुच जब मैं यह सब कुछ इन पूज्य बहिनों से सुन रहा था तो जहाँ एक ओर मैं यह अनुभव करते हुये हृदय में दुःख अनुभव कर रहा था कि धीरे-धीरे माता जी संसार से विदा हो रहीं है, वहाँ दूसरी ओर मेरा हृदय गद्‌गद् होता था, इसलिये कि ऐसी अनुपम मां के प्रति ऐसी श्रद्धा होनी ही चाहिये, क्योंकि वास्तव में ये उसकी पात्र हैं।

इन बहिनों ने भी अपने बेटे-बहू के साथ मिल कर जैसी उस मां की सेवा की है वह भी एक मिसाल रहेगी। अतः वे मां प्रायः इन्हें कहा भी करती थीं। "बेटियो ! मैं तो तुम्हारे लिये कुछ भी नहीं कर सकी, पर तुम, वेटी ललित, रमेश आदि के साथ मिल कर मेरी जो सेवा कर रही हो, वह मुझे अनुभव होती है।"

इस पर वेटियां कहती हैं—"मां जी ! यदि आप हमें ही अपने हृदय से सदा चिपकाये रहतीं तो शायद इतनी बड़ी सेवा आप कभी नहीं कर पातीं जो आपने की। अतः आप तो हमारे लिये और भी अधिक पूज्य बन गयीं।"

उस मां की कहानी मैं क्या कहूँ ? कहाँ तक कहूँ ? इन अन्तिम कष्ट के दिनों में भी आप मनोबल से अत्यन्त सबल थीं-८-३-८१ को जब हम उन्हें देखने गये तो वे बोलीं–"बेटा, तुम मेरे विद्वान् बेटे हो,

तुम पर मुझे बहुत गर्व है, तुम से मुझे बहुत आशाएं हैं। मैं ने संसार में बहुत से महापुरुषों का संग पाया, उन से भी मैंने बहुत कुछ सीखा। ऐसे ही अन्य भी अनेकों प्राणियों को मैं मिली। उन से भी मैं ने बहुत कुछ ग्रहण किया, स्नेह सम्मान आदि। मेरा उन सब को हाथ जोड़ कर प्रणाम कहना, मुझे किसी से भी कुछ गिला नहीं, शिकवा नहीं, शिकायत नहीं। मेरे लिये सब ने बहुत कुछ किया…।'

मैं उन के उन शब्दों से इतना प्रभावित हुआ कि मैं बता नहीं सकता। मुझे उस दिन सचमुच ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे मुझ से वे विदा ले रहीं हैं (वैसे दीखने को बाहर से मैं वहाँ से विदा हो रहा था पर वास्तव में वे विदा होती जा रहीं थी) और मेरे माध्यम से वे अपने सभी सत्संगी माताओं बहिनों तथा भाईयों के प्रति अपना हार्दिक स्नेह एवं कृतज्ञता का प्रकाशन कराना चाहती थीं आदि। सो उन की ओर से मेरा आप सब को हार्दिक प्रणाम है…।"

पुनः चरण छू अर जब हम चलने लगे तो–"बेटा ! मेरे अन्तिम सारे यज्ञ भी आप ही ने करने हैं ।" हम बाहर को जाते, पर उस दिन कुछ ऐसा हो रहा था कि पैर बाहर को नहीं जाते थे। खैर हम गये, रास्ते में मैं (अपनी अर्धाङ्गिनी) सरोज जी से पूछता रहा कि–" छुट्टी बिलकुल है नहीं, पता नहीं मैं पूज्या माता जी की इस अन्तिम अभिलाषा के अनुसार यह सब कर सकूंगा या नहीं ? यह प्रभु जाने !'

उनको यह आशंका थी कि बहन कर्मदेयी और परमेश्वरी बहुत रोयेंगी, करलायेंगी, अतः उन दोनों को १६ मार्च को ही दूसरी बहिन को देखने के लिये जम्मू भेज दिया। इधर माता जी के अपने शरीर

की भी स्थिति शनैः शनः बिगड़ने लगी। १८ मार्च को वे कुछ व्याकुलता अनुभव करने लगीं। डाक्टर ने २ बजे इञ्जेक्शन दिया। कुछ समय अचेत रहीं। फिर पर्याप्त पसीना आया जिसे वे स्वयं पोंछती रही। ४ बजे कुछ सजग हुईं। बेटी ने पूछा-'माता जी, यह क्या है ?" बोलीं- "ऋषि दयानन्द का चित्र है।" फिर ७ बजे थोड़ा दूध पिया और बेटियों से कहा-"तुम भोजन कर लो।" साढ़े आठ बजे वे भोजन कर के माता जी के पास आकर बैठ गयीं और उनकी स्थिति को देखती रहीं। ९ बडे उनकी स्थिति को कुछ और बिगड़ते देख कर इन्होंने डाक्टर को बुलवाया। इसी समय कुछ पारिवारिक एवं अन्य महानुभाव भी आ गये थे। माता जी ने रजाई हटवा दी, सर्दी है' पुनः डालने पर उन्होंने रजाई को मना कर दिया। फिर चद्दर देने पर डाल ली। उनकी बिगड़ती हुई स्थिति देख कर दोनों बेटियों ने ओ३म् - ओ३म् बोलना आरम्भ किया। इस पर माता जी बोलीं, "देखो तुम बोलो मत, मैं स्वयं सब कर रही हूँ। तुम बोलती हो तो विघ्न पड़ता है। सब को बाहर कर दो और दरवाजे खोल दो। मुझे बुलाओ मत...।" बस सब बाहर चले गए। दोनों बेटियां बैठी रहीं। बस फिर वे आँखें मून्द कर शनैः-शनैः प्रभु का नाम लेते-लेते १८ मार्च १९८१ को शान्त हो कर रात को साढ़े ९ बजे ऐसे सो गयीं कि फिर उठाए न उठ सकीं। उन की इस स्थिति के अनुरूप ही किसी कवि ने बड़ा ही सुन्दर कहा है :—

न जन्म सुख, न मृत्यु दुःख, बस इतनी सिर्फ बात है।
किसी की आँख खुल गयी, किसी को नींद आ गयी॥

ऐसी सेवा, सरलता और साधना की साक्षात् मूर्ति को हमारा शत-शत प्रणाम !

विनीत— *रामप्रसाद वेदालंकार*

१९-३-८१ को माता जी के इस पार्थिव शरीर का दाह संस्कार होना था। फोन द्वारा सूचना दो-तीन बार माडल टाऊन दिल्ली हमारे यहाँ आ चुकी थी। अतः प्रभु की कृपा ही समझिये कि मैं सहसा १९-३-८१ को ४ बजे दिल्ली पहुँचा। सूचना मिलते ही हम श्मशान भूमि-सीधा गये। वहाँ पूज्या माता जी के ८-३-८१ के आदेशानुसार मैं उनके अन्तिम संस्कार के समय पहुँच गया। बड़ी श्रद्धा से उस संस्कार को कराने के उपरान्त पुनः २२-३-८१ को शान्ति यज्ञ एवं श्रद्धाञ्जलि सभा को सम्पन्न करके उन्हीं की भावनाओं और आज्ञाओं के अनुसार आज आश्रम में उनके प्रति श्रद्धांजलि सभा के उत्तरदायित्व को निभाने के उपरान्त उन्हीं की पुण्य स्मृति में, उन्हीं की यह जीवन गाथा [[1]वेदोपदेश, भाग-१ पुस्तक सहित] श्रद्धांजलि के रूप में आप के कर कमलों में एक गुप्त दिव्य दानी के पूर्ण सहयोग से प्रकाशित करा कर प्रदान कर रहा हूँ। आशा है इस के स्वाध्याय से आपको जीवन में कुछ आगे बढ़ने और ऊपर उठने में सहयोग मिलेगा।

विनीत—*रामप्रसाद वेदालंकार*

---

१ अब वेदोपदेश भाग-१ पृथक् प्रकाशित हो गया है और पूज्या माता जी की जीवन गाथा श्रद्धालुओं की मांग पर पृथक प्रकाशित होकर आपके कर कमलों में दिया जा रहा है।

पूज्या माता जी के कुछ वे प्रिय भजन जिन्हें गा-गा कर वे प्रायः स्वयं विभोर हो जातीं थीं और अपने साथ-साथ औरों को भी विभोर किये रहतीं थीं........।

॥ भजन १ ॥

ओम् ओम् ओम् मेरा बोले रोम रोम,
ओम् ओम् ओम् मेरा बोले रोम रोम ॥
सूरज में प्रभु जी ज्योति तुम्हारी,
चांद में प्रभु जी शान्ति भारी ॥
ओम् ओम् ओम्.....................

नदियां भी बहतीं, गीत सुनाती।
विच समुद्र दे, हस्ती मिटाती ॥
ओम् ओम् ओम्....................

ऋषियों ने जग विच ओम् ध्याया।
वेदां दा ज्ञान उन्हाँ अन्दरुं पाया ॥
ओम् ओम् ओम्....................

अन्दरुं बाहरुं इक रंग रंगिये,
परम पिता कोलूँ भक्ति जे मंगिये ॥
ओम् ओम् ओम्....................

हृदय भीतर ध्यान लगालो,
परम पिता जी दे दर्शन पालो ॥
ओम् ओम् ओम्....................
दसवें द्वारे दी शोभा निराली,
लग जाये वृत्ति फिर खुले न ताड़ी ॥
ओम् ओम् ओम्....................

भजन २

चल चलिए, चल चलिए सत्संग,
मना उठ चल चलिए।
सत्संग विच हैं मोती हीरे,
मिलते हैं पर धीरे-धीरे ॥
कदी न होविए तंग
मना उठ चल चलिए..........

सत्संग विच वैंहदी ज्ञान दी गंगा,
निर्मल करिए अङ्ग-अङ्ग ॥
मना उठ चल चलिए ....

लखाँ पापी-सत्संग तारे,
बाल्मीक ऋषि संग ॥
मना उठ चल चलिए....................

सत्संग विच रहदें ब्रह्म ज्ञानी,
मैंनूं आत्म दर्शन दी उमंग ॥
मना उठ चल चलिए....................

चल चलिए, चल चलिए सत्संग,
मना उठ चल चलिए ॥

भजन ३

सत्संग दा किला बना लो,
जे कर जितना जे ।
मेल मिलाप दी फौज बना लो,
शुभ कर्मां वाली वर्दी पालो ।
तुसी आपस विच प्रेम बढ़ा लो,
जे कर जितना जे ।

पंजा चोरां पाया घेरा
लुट लिया घर सारा मेरा ।
तुसी अपना आप बचा लो ॥
जे कर जितना जे ।

इवें मिल जाओ, जिवें दूध विच पाणी
सत्संग दी है पक्की एह निशाणी,
सत्संग विच प्रेम बढ़ा लो ।
जे कर जितना जे ॥

प्रभु नाम दे बम बना लो,
कपट किले नूं तुरत गिरा दो ।
तुसी ओम् दे झण्डे लगाओ,
जे कर जितना जे ।

हिन्दु जाति है सागर भारी,
बून्द बून्द घट रही न्यारी ।
तुसी आपस विच प्रेम बढ़ा लो,
जे कर जितना जे ।

सत्संग दा किला बना लो ।
जे कर जितना जे ।

भजन ४

हट खुल गई ओम् शहनशाह दी,
सौदा लैंगे नसीबां वाले— हट खुल गई ....

इस हट्टी विच सारे नीं सौदे,
दिसदे न्यारे न्यारे— हट खुल गई.....................

जो जिया चाहे सोई खरीदो,
ओम् अवाजाँ मारे— हट खुल गई....................

बादल गरजे बिजली चमके,
विच-विच धमकन तारे-हट खुल गई ....

अनहद ताल बजे दिन राति,
बोलन जै-जै कारे— हट खुल गई.....................

नो दरवाजे तज दे इस दे,
चढ़-चढ़ दसवें द्वारे— हट खुल गई... ....

लगे निशाने त्रिकुटि टूटे,
जगे जोत करतारे— हट खुल गई......... ....

विरला गाहक कोई इसदा,
ओम् अवाजां मारे— हट खुल गई...... ....

भजन ५

इस जग की तार-तार में भगवान् छिपे बैठे हैं।
इस माया के विस्तार में, भगवान् छिपे बैठे हैं,
यह सूर्य, चन्द्र, तारे, यह लोक-लोकान्तर सारे ॥
सिन्धु की गहरी धार में, भगवान् छिपे बैठे हैं ....

यह कैसा जगत् बनाया, हर वस्तु विच आप समाया,
मेरे हृदय की गूंज पटार में, भगवान् छिपे बैठे हैं।
ये नदियाँ नाले सारे, ये जंगल पर्वत सारे ॥
इन फूलों की गुलजार में, भगवान् छिपे बैठे हैं..........................

जिन्हां अन्दर ध्यान लगाया, उन्हाँ प्रभु दा दर्शन पाया,
मेरे रोम-रोम संचार में, भगवान् छिपे बैठे हैं।
इस जग की तार-तार में भगवान् छिपे बैठे हैं..................

भजन ६

दीनाबन्धु तेरे कोलों, एहो वर मंगदी,
करुणा सिन्धु तेरे कोलों एहो वर मंगदी।
शाल-दुशाले होवन, खद्दर दा वेष होवे,
घर विच होवां चाहे, चाहे परदेश होवे ॥
वेला न गवावां प्रभु तेरे सत्संग दा ॥ दीनाबन्धु.........

देह आरोग्य होवे, चाहे कोई रोग होवे,
हर्ष विच होवां चाहे, चाहे कोई शोक होवे।
भक्ति विच मस्त होवाँ, एहो वर मंगदी ॥ दीनाबन्धु.........

सत्संग खुला होवे, प्रेम रस डुल्दा होवे,
प्रेम प्याला पीता होवे, एहो वर मंगदी ॥ दीनाबन्धु.........

जंगल विच वासा होवे, प्रभु जी दा आसरा होवे,
ऋषियाँ दी संगत होवे, एहो वर मंगदी ॥ दीनाबन्धु.........

विरजानन्द जैसे गुरु होवन, दयानन्द जैसे शिष्य होवन,
वेदां दा उपदेश होवे, एहो वर मंगदी ॥ दीनाबन्धु.........

कृष्ण जैसे गुरु होवन, अर्जुन जैसे शिष्य होवन,
गीता दा उपदेश होवे, एहो वर मंगदी ॥ दीनाबन्धु.........

भजन ७

जोत जगदी अन्दर जोत जगदी,
नी तू अन्दर बड़ के वेख, अन्दर जोत जगदी।
सोहनी जोत दा चमकार, चमकन सूर्य कई हजार ॥
उत्थे अन्त न पारावर, अन्दर जोत जगदी ॥
सुरतीं गगन मंडल ले जावीं, जाके अमृत दा रस पावीं।
अपने दिल दी तपत बुझावीं, अन्दर जोत जगदी ॥
उत्थे अचरज दी है बात, न कोई दिन ते न कोई रात।
इको ईश्वर दी है जात, अन्दर जोत जगदी ॥
तेरे अन्दर है आनन्द बाजा, तेनू कहँदा आजा–आजा
उस दी ज्योति विच समा जा, अन्दर जोत जगदी ॥
तेरे सुन्दर फुलां दी सेज, नी तूँ अन्दर बड़ के वेख।
बाहर तपदी बालू रेत, अन्दर जोत जगदी ॥

भजन ८

जिन्हाँ प्रेमियाँ नूँ भक्ति वाले तीर लगदे ।
बहिनों धर्म दे पिछे उन्हाँ दे शरीर लगदे ॥
छुपे गुदड़ी विच लाल, रेहंदे मस्त हर हाल,
फटे–कपड़े तन तो पाये, लीरों–लीर लगदे ॥
जेहड़े रत्ते नाम रंग, जुड़ गये ईश्वर दे संग,
ओ ताँ प्रभु दे द्वारे, दे फकीर लगदे ॥

भजन ९

कर लो बहिनों प्यारियो, संध्या दो वेले,
संन्ध्या दो वेले, कर लो शाम ते सवेरे। कर लो बहिनों…
जिस ईश्वर तैनू पैदा कीता, उस दा नाम कदी न लिता,
फेर पछताओगी, बैठ के अकेले ॥ कर लो बहिनों ……
संन्ध्या वी करिये, हवन वी करिये।
ईश्वर दे चरनी चित्त धरिये
प्यारिये विचार के बैंठ के अकेले ॥ कर लो बहिनों……
जे तू प्रभु संग प्रीत लगई,
कट जावे तेरी दु:खाँ दी फ़ाई।
सुखाँ दे नाल प्रभु सदा तेनू मेले ॥ कर लो बहिनों…… ……

—*—*—*—

श्रद्धा साहित्य प्रकाशन में दान देने वाले
* महानुभावों की सूची *

१.	गुप्त	१०१)
२.	गुप्त	५०)
३.	गुप्त	२५)
४.	गुप्त	५१)
५.	गुप्त	२१)
६.	गुप्त	५१)
७.	गुप्त	५१)
८.	ओम आश्रम खुब्बनपुर, श्री बत्रा जी	५०)
९.	श्री सेठ धर्मप्रकाश बुढ़ाना, जि० मुजफ्फर नगर	३१)
१०.	डा० विद्या सागर, रामकोट	२०)
११.	गुप्त दान हैदराबाद	५००)
१२.	बहिन कौशल्या ग्रोवर, देहरादून	५१)
१३.	माता कुन्ती देवी आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर	२०)
१४.	बहिन उषा चौधरी	३०)
१५.	स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती मासिक ११ से ३ मास का	३३)
१६.	बहिन कृष्णा देवी पिशाच मोचन वाराणसी	२१)
१७.	श्री जीवतराम बनिया बाग वाराणसी	२१)
१८.	श्री मोहनदास सूरजकुण्ड वाराणसी	२१)
१९.	बहिन रमादेवी अर्दली बाजार वाराणसी	२१)
२०.	श्री नन्दलाल चेतगंज ,,	२५)
२१.	श्री रामजी बाबू कचौडी गली ,,	५१)
२२.	श्री गोपाल दास गुप्ता ,,	२५)
२३.	वैदिक सत्संग अर्दली बाजार ,,	२६)
२४.	श्री ओम प्रकाश बक्शी देहरादून	२५)
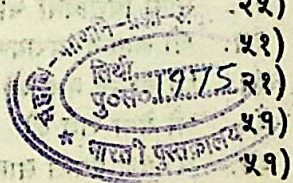
२५. श्री ऋषि कुमार नैशनल रोड देहरादून २५)
२६. बहिन श्यामा देवी रस्तोगी लक्ष्मण चौक देहरादून २५)
२७. श्री बसन्तलाल गुप्ता रेलवे आरक्षण विभाग देहरादून २०)
२८. राज महाजन प्रधाना आ. स. सूरज कुण्ड मेरठ २०)
२९. बहिन रमेश वर्मा दिल्ली २५)
३०. माता विद्यावती चोपड़ा वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर २५)
३१. श्री आनन्द नारायण मिश्र मुरादाबाद ५१)
३२. श्री वीरेन्द्र नाथ जी मुरादाबाद ६०)
३३. श्री सेवा राम जी " ६०)
३४. श्री वैद्य बसन्त लाल जी " ४०)
३५. श्री आलोक कुमार अग्रवाल " २५)
३६. श्री वीर सिंह जी वर्मा " २०)
३७. श्री राजेन्द्र नाथ " २०)
३८. श्री हरिश्चन्द्र जी " २०)
३९. श्री अशोक कुमार जी " २०)
४०. गुप्त दान २०)
४१. माता सीता जी चण्डीगढ़ " ५०)
४२. श्री कश्मीरीलाल ट्रस्ट से द्वि मासिक
द्वारा श्री चौधरी प्रताप सिंह जी ४२)
४३. बहिन सुनीता सलूजा यमुना नगर १००)
४४. श्री गुलशनराय वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर १००)
४५. श्री रामकिशन कपाही २०)
४६. श्री हरबंस लाल बतरा बरेली ३१)
४७. श्री डा. एस. एन गुप्ता मुरादाबाद ११०)
४८. श्री किशन लाल संदलपुर ५६)
४९. बहिन प्रमिला कुमार द्वि मासिक सान्ताक्रुज़ बम्बई १०१)
५०. श्री प्यारे लाल विजय कुमार मोगा ३१)

५१.	श्री राम प्रकाश जी मोगा	२१)
५२.	आर्य गर्ल्स हायर सैकेण्ड्री स्कूल मोगा	१०१)
५३.	बहिन प्रमिला कुमारी द्वि मासिक	१००)
५४.	स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती (मासिक)	११)
५५.	श्री इन्द्रलाल जी ज्वालापुर	२०)
५६.	श्री गोपी वल्लभ उपप्रधान आ. स. रामपुरा कोटा	२०)
५७.	माता सरस्वती जी वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर	५१)
५८.	श्री रूपचन्द जी चन्डीगढ़	२०)
५९.	बहिन विद्यारानी माडल टाउन दिल्ली	१००)
६०.	गुप्त दान	२०)
६१.	गुप्त दान	३०)
६२.	श्री तेजपाल सिंह, सुरेशकुमार आर्य	२२)
६३.	बहिन अमरवती कपायी वाराणसी	११)
६४.	श्री दु खहरण प्रसाद गोण्डा	२०)
६५.	श्री अमर नाथ जी उज्जैन म. प्र.	५१)
६६.	मिसिज कला पोखरानो सान्ता कुन्ज बम्बई	१०१)
६७.	श्री कृष्णलाल डाबर अन्धेरी पश्चिम बम्बई	५१)
६८.	बहिन शिवराज वती बम्बई	३०)
६९.	संजीव कुमार सुपुत्र बहिन शकुन्तला जी ज्वालापुर	५१)
७०.	आर्य समाज ज्वालापुर	२५०)
७१.	श्री महेश कुमार शर्मा	२१)
७२.	श्री महाबीर शर्मा नगीना	२५)
७३.	श्री ला. अमरनाथ जी महाराज अमृतसर	५०)
७४.	श्री अनिल कुमार लखनऊ	२१)
७५.	श्री बिहारी लाल धवन कमला नगर देहली	५१)
७६.	माता मालती जी योग निकेतन ऋषिकेश	२१)

"श्रद्धा साहित्य प्रकाशन" द्वारा श्रद्धा पूर्वक दान देने वाले महानुभावों के सहयोग से लेखक की

प्रकाशित पुस्तकें–

क्र. सं.	नाम पुस्तक	प्र. सं.	द्वि. सं.	तृ. चतु. सं.
१.	प्रार्थना सुमन, भाग–१	११००	४००	
२,	कौन चैन की नीन्द नहीं सो सकते और उसके उपाय	२०००	२०००	८०००
३.	वेद सुधा, भाग–१	२०००	४०००	
४.	विदुर जी की दृष्टि में बुद्धिमान् कौन ? भाग–१	२०००	४०००	
५.	महान् विदुर के महान् उपदेश	२०००		
६.	वेद सुधा, भाग–२	२०००	४०००	
७,	विनय सुमन, भाग–१	२०००	४०००	
८.	प्रार्थना प्रदीप, भाग–१	२०००	४०००	
९.	प्रार्थना प्रसून, भाग–१	२०००	४०००	
१०.	प्रार्थना सुमन, भाग–१	२०००	४०००	
११.	विनय सुमन, भाग–२	२०००	४०००	
१२.	अनन्त की ओर	२०००	४०००	४०००
१३.	वैदिक पुष्पाञ्जलि भाग–१	२०००	४०००	
१४.	वैदिक पुष्पाञ्जलि, भाग–२	२०००		
१५.	वैदिक पुष्पाञ्जलि भाग–३	२०००		
१६.	वैदिक पुष्पाञ्जलि भाग–४ (अप्रकाशित)			
१७.	वैदिक गृहस्थाश्रम (सुखी गृहस्थ)	३०००	४०००	
१८.	प्रभात वन्दन	३०००	४०००	
१९.	शयन विनय	४०००		

२०. वेदोपदेश भाग–१ ४०००
२१. वैदिक रश्मियां, भाग–१ ४०००
२२. विनय सुमन, भाग–३ ३०००
२३. विदुर जी की दृष्टि में बुद्धिमान कौन ? भाग–२ ४०००
२४. वैदिक आर्दश परिवार भाग–१ ४०००
२५. वैदिक रश्मियां भाग–२ ३०००
२६. (ब्रह्म यज्ञ) वैदिक संध्या ४०००
२७. वैदिक रश्मियां भाग–३ ३०००
२८. "पावमानी वरदा वेद्रमाता" ४०००
२९. यम–नियम ४०००
३०. "जीवन गाथा"— माता भागवन्ती ३०००

शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली पुस्तकें

१. याज्ञवल्क्य मैत्रेयी संवाद
२. नचिकेता के तीन वर
३. अष्टांग योग
४. वैदिक रश्मियाँ भाग–४
५. वेदोपदेश भाग–२
६. वेद सुधा भाग–३
७. वेदाध्ययन, प्रथम, पुष्प भाग १, २, ३
८. यज्ञसुधा
९. वैदिक आदर्श परिवार भाग–२
१०. जुआ मत खेलो, पुरुषार्थ करो, पुरुषार्थ की कमाई में ही सर्वविध सुख निहित है।

नोट— पुस्तक विक्रेता आदि को श्रद्धा साहित्य प्रकाशन के लिये १ रु० १० पैसे दान देकर भी पुस्तक ली जा सकती है।

मुद्रक–- गोयल प्रिंटर्स (☎ ९२) मेहता भवन, पीठ बाजार, ज्वालापुर